आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ 'पर्वतीय'

PREDICTIVE ASTROLOGY

हिन्दी टीका एवं व्याख्या सहित
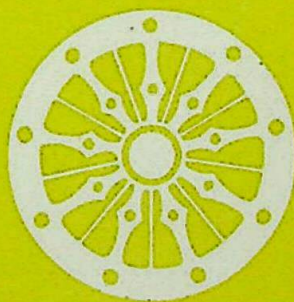
द्वादश भावों का फलादेश जानने
के लिये अनुसंधानपूर्ण मौलिक ग्रंथ

पुस्तक-परिचय

प्रस्तुत पुस्तक फलादेश से सम्बन्धित है। ग्रह योगों पर विशेष बल न देते हुए ग्रंथकार ने भाव की स्थिति, बलाबल, भाव की जन्मतिथि, भाव का नक्षत्र आदि निकाल कर उसके बलानुमान से फल प्राप्ति की मात्रा तथा समय का सारगर्भित, मौलिक व युक्तिसंगत ढंग से विवेचन किया है।

इसी प्रकार ग्रहों के भी बलाबल तथा विशिष्ट लक्षण परिज्ञान द्वारा फलादेश बताया गया है। किन परिस्थितियों में ग्रह असमर्थ, नष्ट या पू[illegible]दायक होता है, यह सब शास्त्रानुकूल तथा अनुभव [illegible] ढंग से विवेचित है।

मूल रूप में श्लोकबद्ध यह पुस्तक आठ प्रकरणों में विभाजित है—

(१) परिभाषा प्रकरण (२) कारक प्रकरण (३) भाव ग्रह प्रकरण (४) भावोपचय प्रकरण (५) भावापचय (हानि) प्रकरण (६) भावोपचयापचय प्रकरण (७) भावफल कालबोध प्रकरण (८) प्रकीर्ण प्रकरण

ग्रंथ में लेखक का अनुसन्धान पूर्ण दृष्टिकोण सर्वत्र मिलेगा। सर्व प्रथम बोधगम्य हिन्दी में विस्तृत भाव बोध सहित टिप्पणी से अलंकृत यह ग्रंथ रत्न फलित ज्योतिष के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाएगा। ऐसा पूर्ण विश्वास है।

॥ श्रीः ॥

भावमञ्जरी

(विस्तृतहिन्दीव्याख्याविभूषिता)

मूलग्रंथकारः

आचार्यमुकुन्ददैवज्ञः 'पर्वतीय'

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्रः

आचार्य, एम० ए०, पीएच० डी०
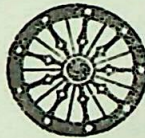
रंजन पब्लिकेशन्स

१६, अन्सारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

विषयानुक्रमणी

॥ श्री शंकरः शं करोतु ॥

पुरोवाक्

भारतीय ज्योतिष की फलित शाखा ऋषियों, मुनियों व आचार्यों के निरन्तर चिन्तन से सतत प्रवाहित है। पराशर मुनि के होराशास्त्रादि ग्रन्थों के विशाल कलेवर के कारण लघु तथा सरल रूप में फलित ज्योतिष के आवश्यक सिद्धान्तों व फल-निर्देश की नीतियों के स्पष्टीकरण के लिए समय-समय पर विद्वानों ने अनेकशः प्रयत्न किए हैं। विशेष रूप से भावफल व ग्रहफल को आधार बनाकर जातकादेश मार्ग, खेटकौतुक, जातकालंकार, मानसागरी, चमत्कार चिन्तामणि आदि पुस्तकों की रचना इस दिशा में मील के पत्थर सिद्ध हुए हैं। विषय का गौरव, शैली की सरलता व मधुरता के सम्मिश्रण का योग उक्त पुस्तकों में होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'भावमंजरी' विद्वान् लेखक के दीर्घकालीन परिश्रम का परिणाम है। जैसा कि इसके नामकरण से ही स्पष्ट है, इसमें कुण्डली के बारह भावों के फल कथन का वैज्ञानिक प्रकार बताया गया है। समस्त आवश्यक विषय का एक स्थान पर सर्वांगीण विवेचन इसकी विशेषता है। फलादेश का ग्रन्थ होने पर भी उपर्युक्त ग्रन्थों की अपेक्षा इसकी विशेषता स्पष्ट दृष्टिगोचर होगी। जहां इन ग्रन्थों में भावस्थ ग्रह के अनुसार ही फलादेश बताकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली है, वहीं पर विद्वान ग्रन्थकार ने इस विषय को अपनी रचना में विस्तार नहीं दिया है। कारण यह है कि इस विषय पर तो सर्वत्र चर्चा मिलती है। इन्होंने सामान्यतः भाव के बलाबल, भाव की तिथि, मान, नक्षत्र व मुहूर्त्त के आधार पर भाव की शुभाशुभता निकालकर तथा भाव, भावेश व भाव कारक के विशिष्ट सम्बन्ध व स्थिति के आधार पर फल प्राप्ति का समय व उसकी मात्रा आदि का निरूपण सांगोपांग ढंग से किया है। इस दृष्टि से ग्रन्थकार का कृतित्व विलक्षण व वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न है।

प्रस्तुत पुस्तक मूल रूप से ग्रन्थकार द्वारा श्लोकबद्ध व लिपिबद्ध रूप में हमें प्राप्त हुई थी। इसकी रचना श्रीमान मुकुन्द दैवज्ञ ने शक संवत् 1869 में की थी जैसा कि स्वयं ग्रन्थकार ने ग्रन्थ समाप्ति पर लिखा है। इसके अतिरिक्त ग्र थकार ने अनेक छोटे-बड़े ज्योतिष ग्रन्थों की भी रचना की है। **आयुर्निर्णय, नष्टजातकम्, प्रसव चिन्तामणि, अष्टकवर्ग महानिबन्धः, ज्योतिष शब्दकोष** आदि ग्रन्थ तो प्रकाशित भी हो चुके हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि (स्वयं ग्रन्थकार द्वारा लिपिबद्ध) ही प्रस्तुत प्रथम संस्करण का आधार है। इसका विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित तथा आवश्यक बाह्य विषयों से संयुक्त यह प्रथम संस्करण यदि पाठकों का कुछ उपकार कर सका तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे। जिसमें प्रकाशक महोदय का विशेष योगदान सराहनीय रहेगा।

सीधे पाण्डुलिपि से ग्रन्थ का भावार्थ समझने में मुझे स्वयं ग्रन्थकार की संस्कृत टीका से विशेष सहायता मिली है, अतः इस पुस्तक के समस्त श्रेय व प्रेय का अधिकार मूल ग्रन्थकार का ही है। मैं तो ग्रन्थकार व पाठकों की मध्यवर्ती कड़ी मात्र हूं। इसके प्रस्तुतीकरण, सम्पादन तथा व्याख्या आदि में त्रुटियां हो सकती हैं। आशा है कि विद्वान सहृदय गुणग्राही दृष्टि से इसे अपनाकर अपनी बहुमूल्य सम्मति देंगे ताकि उपयुक्त संशोधन सम्भव हो सके।

इस ग्रन्थ की व्याख्या व सम्पादन कार्य में मेरे जिन गुरुओं का आशीर्वाद विशेष रूप से मेरा सम्बल रहा है मैं उनकी शिष्यवत्सलता से भावाभिभूत हूं। मेरे मित्रों व सहयोगियों ने जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग मुझे दिया है मैं उनका आभारी हूं। फलित शास्त्र के गहन विषय में मेरी अल्पविषया मति का विशेष महत्त्व नहीं है, अपितु पूर्वाचार्यों की मेधा का प्रत्यक्ष फल रूपी ग्रन्थ समुदाय मेरे समक्ष था, वास्तव में वेही श्रेयोभागी हैं। मैं तो कालिदास के शब्दों में नम्रतापूर्वक यही कह सकता हूं—

'अथवा कृतवाग्द्वारे फलिते पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥'

(रम्भा तृतीया)
ति० 21.5.1985 ई०

विदुषां वशंवद
सुरेशचन्द्र मिश्र

मंगलाचरणम्

शिवाशिवांगसम्भूतिं, हेरम्बं नौमि कामदम् ।
यत्कृपा तनुते नूनममन्दानन्दसंहतिम् ।।१।।

नमामि तां परां वाचं धिषणाकल्मषापहाम् ।
यस्या विवर्तरूपेण वाङ्मयं प्रतिभासते ।।२।।

राशीन् द्वादशसम्मितान्नवग्रहान्सूर्यादिमुख्यान् विभून्,
नक्षत्राण्यथ चक्रसंस्थितखगान् सर्वांश्च तान् भावये ।
भावांश्चापि च राशिचक्रनिहितान् दिष्टादिनिर्देशकान्,
स्पृष्ट्वा सन्नतिपूर्वकं सुमनसा भव्याय तानाश्रये ।।३।।

तमोऽरिं भास्करं नत्वा ब्रह्मरूपं गुरूं परम् ।
प्रणवां भावमञ्जर्याष्टीकां कुर्वे यथामति ।।४।।

संस्कृते सन्ति सन्दर्भाः प्रायो होराप्रकाशकाः ।
तस्मात् सुरेशमिश्रोऽहं हिन्दीभाषां समाश्रये ।।५।।

विद्वान लेखक के अन्य मौलिक ग्रन्थ

१. प्रसव चिन्तामणि:

(Astrologic Embryology)

२. नष्ट जातकम्

(Lost Horoscopy)

३. आयुर्निर्णय:

(Life Span Calculas)

४. अष्टकवर्ग महानिबन्ध :

(Astak Varga System of Predictions)

फलित ज्योतिष का चमत्कारिक ग्रंथ

।। श्री नन्दनन्दनाय नमः ।।

१ परिभाषा प्रकरण

मंगलाचरण :

निधाय मानसे व्रजाटवीविभोः
पदाम्बुजं विधाय वन्दनं गुरोः।
मुकुन्दरामदैववित्सुमञ्जुलां
करोमि भावमञ्जरीं विदां मुदे ।।१।।

लीला भूमि व्रजवन में विहार करने वाले परमेश्वर, श्री कृष्ण के चरण-कमलों का हृदय में ध्यान करके तथा परम पूज्य गुरु की वन्दना कर मैं मुकुन्द दैवज्ञ विद्वानों की प्रसन्नता के लिए अति मनोहर इस 'भावमञ्जरी' की रचना करता हूं।

सूर्येन्द्वारविदिज्यभार्गवयमा राहुश्च केतुर्ग्रहाः
पापाः क्षीणविधुध्वजैन्यहिकुजेनास्तैर्युतो ज्ञोऽप्यघः।
सौम्याः पूर्णशशी गुरू व्यघबुधोऽथोभान्यजो गौर्युगं
कर्कः सिंहसुतातुलालितुरगा नक्रो घटः स्युर्झषः ।।२।।

सूर्य, चन्द्र, मंगल (आर) बुध (विद्) बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु व केतु, ये नौ ग्रह होते हैं। अपने शील व स्थिति के आधार पर इनमें शुभ व पाप ग्रहों का विभाग है; जैसे—क्षीण चन्द्र, केतु, शनि, राहु, मंगल और सूर्य ये पाप ग्रह हैं। यदि बुध पाप ग्रह से युक्त हो तो पाप ग्रह माना जाता है। पूर्ण चन्द्र, बृहस्पति, पापसंगरहित बुध, तथा शुक्र ये सौम्य ग्रह होते हैं। बारह राशियां हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ व मीन।

काल-पुरुष का अंग-विभाग :

कालस्य मौलिः क्रिय आननं गौ-
र्वक्षो नृयुग्मो हृदयं कुलीरः।

क्रोडं मृगेन्द्रोऽथ कटी कुमारी
बस्तिस्तुला मेहनमस्य कौर्पिः ॥३॥
इष्वास ऊरू मकरश्च जानू
जंघे घटोऽन्त्यश्चरणौ प्रतीकान् ।
सञ्चिन्तयेत्कालनरस्य सूतौ
पुष्टान्कृशान्नुः शुभपापयोगात् ॥४॥

बारह राशियों की स्थापना से काल-पुरुष के अंग-विभाग को जाना जाता है। मेष राशि सिर में, वृष मुंह में, मिथुन छाती में, कर्क हृदय में, सिंह पेट में, कन्या कमर में, तुला बस्ति (पेडू) में, वृश्चिक लिंग में, धनु जांघों में, मकर घुटनों में, कुम्भ पिंडली में तथा मीन की पैरों में स्थापना की जाती है।

मनुष्य के जन्म-समय जिस राशि में शुभ ग्रह विद्यमान हों या शुभ ग्रह की वहां दृष्टि हो तो उस राशि के प्रतिनिधि अंग में शुभलक्षण (पुष्टता, कार्यशीलता व सुन्दरता) बताना चाहिए। इसके विपरीत जो राशि क्रूर ग्रह से आक्रान्त हो उस राशि के अंग में उपद्रव (अपुष्टता, कुरूपता, अशक्तता) आदि का निर्देश करना चाहिए।

राशियों का स्वरूप :

तौली कुलीरो हरिणः क्रियश्चराः
कौर्प्यो वृषः कुम्भधरः हरिः स्थिराः ।
द्वन्द्वा युवत्यन्त्यनृयुग्घया अथो
वर्गोत्तमाः स्वीयलवाः स्वराशिषु ॥५॥

मेष, कर्क, तुला व मकर ये **'चर'** राशियां हैं। वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भ ये **'स्थिर'** राशियां हैं। मिथुन, कन्या, धनु और मीन ये **'द्विस्वभाव'** राशियां हैं।

इन मेषादि राशियों में अपना नवांश **'वर्गोत्तम नवांश'** होता है। आशय यह है कि चरराशियों में पहला नवांश, स्थिर राशियों में पांचवां तथा द्विस्वभाव राशियों में नौवां नवांश 'वर्गोत्तम' माना जाता है। यदि वर्गोत्तम नवांश में जन्म हो तो शुभ फलदायक तथा सौभाग्य-सूचक होता है।

राशियों का प्रकृति-वर्ण-दिशादि विभाग :

पित्ताभिधं पवनधातुसमौ कफस्त्र-
मेंषाद्भुजोद्भवविडंघ्रिजवाडवाख्याः ।
तद्वत्सुरेशहरितो भनिवासकाष्ठाः
क्रूरः शुभः क्रियत ओजसमौ नृनार्य्यौ ।।६।।

मेष पित्त प्रकृति, वृष वात प्रकृति, मिथुन सम प्रकृति, कर्क कफ प्रकृति होती है। इसी क्रम से अन्य राशियों की प्रकृति भी जान लेनी चाहिए; जैसे—सिंह व धनु पित्त-प्रधान, कन्या व मकर वात-प्रधान, तुला व कुम्भ सम (वात, पित्त, कफ की समानता) प्रकृति तथा वृश्चिक व मीन कफ प्रकृति हैं।

मेष, सिंह व धनु क्षत्रिय वर्ण; वृष, कन्या व मकर वैश्य वर्ण; मिथुन, तुला व कुम्भ शूद्र वर्ण एवं कर्क, वृश्चिक व मीन ब्राह्मण वर्ण राशियां होती हैं। इसी तरह मेष, सिंह व धनु की पूर्व दिशा; वृष, कन्या व मकर की दक्षिण दिशा; मिथुन, तुला व कुम्भ की पश्चिम दिशा तथा कर्क, वृश्चिक एवं मीन की उत्तर दिशा समझनी चाहिए।

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ क्रूर व विषम राशियां हैं तथा शेष सौम्य व सम हैं। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ पुरुष संज्ञक हैं तथा शेष स्त्री संज्ञक हैं।

राशियों का बलाबल व शुभाशुभत्व :

यो राशिरीशेन निजेन दृष्ट-
युक्तो विदा वाक्पतिनेक्षितः सः ।
वेद्यो बली नो सहितेक्षितोऽन्यैः
स्वकीयशीलात्स्वफलं दिशेद्यः ।।७।।
राशिर्न खेटेक्षितसंयुतः स
सन्सौम्ययुक्तेक्षित उग्रराशिः ।
सद्राशिरुग्रान्वितलोकितोऽसन्
केन्द्रादिगः पूर्णसमोनवीर्य्यः ।।८।।

जो राशि अपने स्वामी ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तथा साथ ही बुध व गुरु से भी दृष्ट हो एवं अन्य कोई ग्रह उसे न देख रहा हो तो वह 'बली'

होती है। जो राशि उक्त प्रकार से दृष्ट न हो तो वह अपने ही स्वभाव व शील के अनुसार फल देती है।

क्रूर राशि को यदि शुभ ग्रह देखते हों तो वह शुभ है तथा शुभ राशि क्रूर ग्रहों से दृष्ट होने पर अशुभ फल देने वाली होती है।

अन्य प्रकार से केन्द्र स्थान (१-४-७-१०) में विद्यमान राशि पूर्ण बली होती है। पणफर गत (२-५-८-११) मध्यबली तथा आपोविलमगत (३-६-९-१२) हीनबली राशि होती हैं।

यस्य क्षेत्रस्य यो भागो बल्यंशस्तद्बलान्मतः।
अबलस्तस्य दौर्बल्ये मध्यमे मध्यमः स्मृतः ॥९॥

राशि के बल से ही 'नवांश' का बल समझना चाहिए। यदि राशि बली है तो नवांश भी बली होता है। राशि की दुर्बलता तथा मध्यमबल के आधार पर क्रमशः नवांश को भी दुर्बल व मध्यम बली ही समझना चाहिए।

राशियों के स्वामी व परमोच्च अंशादि का विभाग :

भौमाच्छज्ञशशीनवित्कविकुजेज्यैन्यार्किजीवा भपा
गोऽशेशा अपि तेऽजगोमृगसुताकर्कान्त्यजूकाः क्रमात्।
तुङ्गा भास्करतो दिगग्निमनुयुक्तिथ्यक्षतारानखै-
र्भागैस्तेऽस्तनता नखैर्यमहयौ तुङ्गौ तमःखेटयोः ॥१०॥

मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि व गुरु ये क्रमशः मेषादि बारह राशियों के स्वामी होते हैं। नवांश की राशियों में भी यह राश्यधिपत्व समान है।

सूर्य मेष में, चन्द्र वृष में, मंगल मकर में, बुध कन्या में, गुरु कर्क में, शुक्र मीन में और शनि तुला में उच्च होता है। इन अपनी राशियों से सातवीं राशि में प्रत्येक ग्रह नीच होता है। राहु व केतु की क्रमशः मिथुन व धनु राशि उच्च बतायी गयीं हैं।

उपर्युक्त उच्च राशियों में सूर्य १० अंश, चन्द्रमा ३ अंश, मंगल २८ अंश, बुध १५, गुरु ५, शुक्र २७ तथा शनि २० अंशों तक परमोच्च होते हैं।

सिंहोक्षाजसुताहया धटघटौ मूलत्रिकोणालया
विंशद्भेनशरैर्हरित्तिथिनखैस्तुङ्गांशतस्तत्लवाः ।
विज्ञेयाः परतोऽर्कतो युवतिभं राहोर्ध्वजस्यान्त्यभं
स्वक्षेत्रं घटलेयभे निगदिते मूलत्रिकोणे तयोः ।।११।।

सूर्य से शनि पर्यन्त सातों ग्रहों की मूल त्रिकोण राशियां क्रमशः इस प्रकार हैं—सिंह-वृष, मेष-कन्या, धनु-तुला और कुम्भ। सूर्य २० अंश तक मूल त्रिकोण व शेष अंशों में स्वगृही होता है। इसी तरह चन्द्र के २७, मंगल के १२, बुध के ५, बृहस्पति के १०, शुक्र के १५ तथा शनि के २० अंश मूलत्रिकोणांश होते हैं। चन्द्रमा वृष में पहले तीन अंश तक उच्च तथा बाद के सत्ताईस अंशों में मूलत्रिकोणी है। इसी तरह बुध कन्या में पहले १५ अंश तक उच्च, १५ से २० अंश तक मूलत्रिकोणी तथा शेष अंशों में स्वगृही होता है। राहु व केतु की क्रमशः कन्या व मीन स्वराशि मानी जाती हैं तथा राहु व केतु की क्रमशः कुम्भ व सिंह राशि मूलत्रिकोण हैं। किसी-किसी के मत में राहु को 'वृष' में स्वगृही मानना चाहिए।

काल-पुरुष-चक्र में ग्रहों का स्थान :

सूरः शिरोवदनयोर्गलवक्षसोग्लौः
पृष्ठोदरेऽवनिजनिः प्रभुतां विधत्ते।
सौम्योंऽघ्रिदोस्सु धिषणः कटिजंघयोर्भौ
गुह्याण्डयोरसित ऊरूकजानुभागे ।।१२।।

यः खेचरो जनुरनेहसि चेत्प्रसव्यः
प्रश्नक्षणे किमुत गोचरके निजेन।
दोषेण सोऽम्बर चरो कुरुते निजाङ्गे
बाधामतो बुधजनैः स समर्चनीयः ।।१३।।

सूर्य का स्थान सिर से मुख तक, चन्द्रमा गले से छाती तक, मंगल पीठ व पेट तक, बुध हाथों व पैरों में, गुरु कटि तथा जांघों में, शुक्र गुप्तेन्द्रिय प्रदेश में तथा शनि घुटनों व पिंडलियों में स्थापित करना चाहिए।

जन्म के समय, प्रश्न समय अथवा गोचर में जो ग्रह प्रतिकूल हो वह अपने अंग क्षेत्र में स्ववातपित्तादि दोषों को करता है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति को उस अनिष्टकारक ग्रह की शान्ति करा लेनी चाहिए। ढुण्डिराज ने भी कहा है कि—

"यदा यदा स्यात् प्रतिकूलवर्ती स्वांगे स्वदोषेण करोति पीडाम्।
इदं तु पूर्वं प्रविचार्य सर्वं प्रश्नप्रसूत्यादिषु कल्पनीयम्।"

आदित्य आत्मा हिमगुर्मनोऽसृक्
सत्त्वं गुरुर्ज्ञानसुखे बुधो वाक्।
शुक्रं सितो दुःखमशुभ्ररोचि-
श्चेदात्ममुख्या बलिनो विहङ्गाः ॥१४॥

तर्ह्यात्मपूर्वा बलवत्तराः स्यु-
र्वीर्य्यैर्विरहिता यदि ते विवीर्य्याः।
व्यस्तं विचिन्त्यं फलमर्कजस्य
राजौ रवीन्दू सचिवौ सितार्य्यौ ॥१५॥

शीतद्युतेः कायभवः कुमारः
पृथ्वीतनूजः पृतनाधिनाथः।
प्रैष्यः पतङ्गात्मभवो बली यो
वृत्तिं तदीयां जनितो लभेत ॥१६॥

इस काल पुरुष चक्र में सूर्य आत्मा, चन्द्र मन, भौम शूरता, बुध वाणी, गुरु ज्ञान व सुख, शुक्र काम-शक्ति व शनि दुःख का कारक है। जो ग्रह जन्म समय में वली हो तदनुसार जातक का वही गुण प्रबल होता है। निर्बल होने से आत्मादि दुःख पर्यन्त तत्त्वों की निर्बलता समझनी चाहिए। लेकिन शनि के सम्बन्ध में विपरीत क्रम अपनाना चाहिए। हीन बली दुःखकारी तथा बली सुखकारी होता है। कल्याण वर्मा ने भी कहा है कि 'विपरीतं शनेः स्मृतम्'।

इन सूर्यादि ग्रहों की पदवी का विचार भी फलादेश के समय कर लेना चाहिए। सूर्य व चन्द्रमा राजा हैं, गुरु व शुक्र मंत्री, बुध युवराज, मंगल सेनापति और शनि सेवक है। जो ग्रह अधिक बली हो उसी प्रकार की प्रवृत्ति व स्वभाव व्यक्ति का होता है।

ग्रहों का काल व वर्ण :

> तिग्मांशोरयनं क्षणो दिनमृतुर्मासो दलं हायनो
> रक्तश्याम इनो यमोऽसिततनुर्गौरास्र आरोऽथ वित्।
> दूर्वाश्यामसमः शशांकसचिवौ गौरौ सितः श्यामलो
> भानोस्ताम्रसितक्षतानि हरितः पीतः सुचित्रोऽसितः ॥१७॥

सूर्य अयन का अधिपति है, चन्द्रमा मुहूर्त्त का, मंगल दिन का, बुध ऋतु का, गुरु मास का शुक्र पक्ष का तथा शनि संवत् का अधिष्ठाता है। आशय यह है कि घटी पलात्मक सूक्ष्म समय विभाग को सम्मिलित किए बिना, स्थूल रूप से काल के सात खण्ड अयनादिक वर्षादिक होते हैं। उनमें सातों प्रमुख ग्रहों का आधिपत्य उपर्युक्त प्रकार से समझना चाहिए।

प्रत्येक ग्रह का अपना रंग है। सामान्यतया सूर्य का लाल रंग, चन्द्रमा का गौर वर्ण, मंगल का लाल चटकीला, बुध का दूव की तरह का श्याम (हरेपन से युक्त) गुरु का गौर वर्ण तथा शुक्र का श्यामल वर्ण है, अर्थात् न तो अधिक गोरा, न अधिक सांवला है। शनि का रंग काला है। ये ग्रहों के नैसर्गिक वर्ण हैं। उपर्युक्त वर्णों के अतिरिक्त फलादेश, प्रश्न या नष्ट कुण्डली निर्माण के प्रसंग में इनके वर्णाधिपत्य का विचार आवश्यक है। इस स्थिति में सूर्य ताम्रवर्ण का, चन्द्रमा श्वेत, मंगल लाल, बुध हरा, गुरु पीला, शुक्र कर्बुर रंग (चितकबरा) तथा शनि काले रंग का स्वामी होता है।

ग्रहों की परस्पर मित्रता व शत्रुता :

> मित्राणीज्यकुजेन्दवोऽर्कविबुधौ सूरीन्द्विना भारुणौ
> भानुग्लौरुधिराः पतङ्गजविदौ भज्ञौस्युरर्कादथो।
> ज्ञो भारेज्ययमा यमासुरगुरू जीवैनिवक्रा यमो
> वक्राग्यौ धिषणः समास्तरणितो वेद्या द्विषोऽन्ये ग्रहा ॥१८॥

सूर्य के—बृहस्पति, मंगल व चन्द्रमा मित्र हैं। चन्द्रमा के—सूर्य तथा बुध; मंगल के—गुरु, चन्द्र व सूर्य; बुध के—सूर्य एवं शुक्र; गुरु के—सूर्य, चन्द्र तथा मंगल; शुक्र के—शनि एवं बुध; शनि के—शुक्र और बुध मित्र होते हैं।

सूर्य का सम बुध है। चन्द्र के—शुक्र, मंगल, गुरु तथा शनि; मंगल के—शनि एवं शुक्र; बुध के—गुरु, शनि तथा मंगल; गुरु का—शनि, शुक्र के—मंगल तथा गुरु, शनि का—गुरु सम है।

इनके अतिरिक्त ग्रहों को शत्रु समझना चाहिए। यह मित्र शत्रु भाव नैसर्गिक है।

ग्रह मैत्री चक्र

ग्रह	मित्र	सम	शत्रु
सूर्य	गुरु मंगल चन्द्र	बुध	शुक्र शनि
चन्द्र	सूर्य बुध	शुक्र मंगल गुरु शनि	
मंगल	सूर्य चन्द्र गुरु	शनि शुक्र	बुध
बुध	सूर्य शुक्र	गुरु शनि मंगल	चन्द्र
गुरु	सूर्य चन्द्र मंगल	शनि	बुध शुक्र
शुक्र	शनि बुध	मंगल गुरु	सूर्य चन्द्र
शनि	बुध शुक्र	गुरु	सूर्य चन्द्र मंगल

ग्रहों की ऋतु :

हेमन्त इन्द्रसचिवस्य शरद्बुधस्य
ग्रीष्मोऽर्कभौमतमसां शिशिरोऽसितस्य।
प्रावृड् विधोः सुरभिरास्फुजितोऽङ्गगस्य
खेटस्य वर्त्तुरुदयस्थदृगाणपस्य ॥१६॥

सूर्य, मंगल तथा राहु की ग्रीष्म ऋतु है। चन्द्रमा की वर्षा ऋतु, बुध की शरद, बृहस्पति की हेमन्त, शुक्र की वसन्त एवं शनि की शिशिर ऋतु होती है।

प्रश्न लग्न या नष्ट लग्न के समय जो द्रेष्काण हो उसी के अधिपति ग्रह की ऋतु से प्रश्नकर्त्ता की कार्य सिद्धि का समय अथवा उसकी जन्म ऋतु आदि का परिज्ञान किया जाता है।

ग्रहों की शारीरिक धातु :

स्नायुः शनेर्भस्य मदोविदस्त्वग्
गुरोर्वसाऽसृक्छशिनोऽस्थि भानोः।
मज्जाऽसृजो जन्मनि वीर्य्यवान्य-
स्तद्धातुसारो भवति प्रजातः ॥२०॥

सूर्य हड्डियों का अधिपति है। चन्द्रमा खून का, मंगल मज्जा का, बुध खाल का, गुरु मेद (चर्वी) का, शुक्र वीर्य का तथा शनि नाड़ियों नसों व स्नायु तन्त्र का अधिपति है।

जन्म के समय लग्न में जो ग्रह बली हो, जिसकी लग्न या लग्नेश पर दृष्टि हो, उन सब ग्रहों के बलाबल के आधार पर मनुष्य की प्रधान धातु का निर्णय किया जाता है।

ग्रहों के वातादि त्रिदोष :

पित्तं रवेर्वातकफौ हिमांशो-
र्मायुर्महीजस्य विदस्त्रिदोषः।
गुरोः कफो वायुकफौ सितस्य
शनेर्नभस्वान् ग्रहधातवोऽमी ॥२१॥

आयुर्विज्ञान में वात, पित्त व कफ ये त्रिदोष हैं। सूर्य पित्त का अधिष्ठाता है, चन्द्रमा वात कफ का, मंगल पित्त का, बुध तीनों दोषों का, गुरु कफ का, शुक्र वात और कफ का एवं शनि वायु का अधिपति है।

टिप्पणी : जन्म समय के बलवान् ग्रह के अनुसार व्यक्ति की त्रिदोषात्मक प्रकृति का निर्णय किया जाता है। अर्थात् सूर्य बलवान् हो तो मनुष्य की प्रकृति पित्तप्रधान होती है। चन्द्रमा से मनुष्य वातकफ प्रधान होता है। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिए।

ग्रहों की जाग्रत सुप्तादि अवस्था :

जागरूक उदितः स्वनवांशः
स्वीयतुङ्गलवकोऽपि तथा स्यात् ।
मित्रखेचरलवः शयनाख्यः
सुप्तकौ त्वधरशात्रवभागौ ।।२२।।

यदि ग्रह अपने नवांश में अथवा स्वोच्च नवांश में हो तो उसकी **'जागरूक'** अवस्था होती है ।

मित्र के नवांश में **'शयन'** अवस्था होती है ।

अपने नीच नवांश या शत्रु ग्रह के नवांश में होने पर ग्रहों की **'सुप्त'** अवस्था होती है ।

टिप्पणी : मतान्तर से राशि के अंशों के आधार पर भी ग्रहों की जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्त अवस्थाएं मानी जाती हैं । सम राशि में प्रथम द्रेष्काण में सुषुप्त, द्वितीय द्रेष्काण में स्वप्न, तथा तीसरे द्रेष्काण में **जाग्रत** अवस्था होती है । विषम राशियों में यह क्रम विपरीत होता है ।

सम राशि	अवस्था	विषम राशि
३० अंश	जाग्रत	१० अंश
२० ,,	स्वप्न	२० ,,
१० ,,	सुषुप्ति	३० ,,

ग्रहों की दृष्टि :

पश्यन्ति त्रिखभं त्रिकोणभवनं पातालपञ्चत्वभं
चित्तोत्थं खचराः क्रमेण चरणर्ध्यैर्निगिरीशः कुजः
अन्ये चाखिलदृष्टयः स्युरथ रुक्सोत्थंस्वखंनैजभं
धीद्यूनं चरणर्द्धितोदनुजराट्केतू क्रमात्पश्यतः ।।२३।।

सभी ग्रह अपने स्थान से तीसरे व दसवें स्थान को एक पाद (१/४) दृष्टि से देखते हैं। पांचवें, नवें को द्विपाद (१/२) चौथे, आठवें स्थान पर त्रिपाद दृष्टि (१/३) तथा सातवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ।

इसके अतिरिक्त शनि तीसरे व दसवें, मंगल चौथे व आठवें तथा गुरु पांचवें व नवें स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

राहु व केतु की दृष्टि के लिए यह नियम है—तीसरे व छठे स्थान पर एकपाद दृष्टि, दूसरे व दसवें द्विपाद दृष्टि, जहां स्वयं स्थित हो उस स्थान पर त्रिपाद दृष्टि तथा पांचवें व सातवें स्थान पर पूर्ण दृष्टि होती है।

ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध :

बन्धश्चतुर्विधोऽन्योन्यभस्थौ पूर्णेक्षितौमिथः।
स्थित्यैकभे तदीयेशलोकनादेकभे स्थितिः ॥२४॥

यदि दो ग्रह एक दूसरे की राशि में हों तो प्रथम **'क्षेत्र सम्बन्ध'** होता है। जैसे सूर्य कर्क में तथा चन्द्रमा सिंह में। दो ग्रह परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो **'दृष्टि सम्बन्ध'** होता है। जिस राशि में ग्रह हो, उस राशि के स्वामी से पूर्ण दृष्ट हो **'अधिष्ठित-राशीश दृष्टि सम्बन्ध'** होता है। एक ही राशि स्थित होने से चौथा **'युति सम्बन्ध'** होता है।

इन सम्बन्धों का बल व प्रभाव क्रमशः क्षीणतर होता जाता है। क्षेत्र सम्बन्ध सर्वश्रेष्ठ होता है। दृष्टि सम्बन्ध श्रेष्ठ है। अधिष्ठित राशीश दृष्ट होना मध्यम है तथा युति सम्बन्ध सामान्य है।

परस्परं स्थितौ राशौ दृग्योगौ कण्टके स्थितिः।
त्रिकोणयोः स्थितिश्चापि बन्धःपञ्चविधो मतः ॥२५॥

उपर्युक्त चारों सम्बन्धों के अतिरिक्त प्रकारान्तर से पांच सम्बन्ध होते हैं। इनमें तारतम्य अर्थात् इनका प्रभाव उत्तरोत्तर क्षीण या बलवान् कदाचित् होता है।

(१) एक दूसरे की राशि में स्थित होना।
(२) परस्पर पूर्ण दृष्टि होना।
(३) एक ही राशि में स्थित होना।
(४) एक ग्रह से केन्द्र स्थानों में स्थित होना।
(५) एक ग्रह से त्रिकोण स्थानों में स्थित होना।

स्थानों के नाम व स्थानाधिपति :

भावाः क्रमाद् द्वादश देहवित्तके
सोत्थाम्बिकासून्वरथो नितम्बिनी।
आयुर्विधिस्तातमनोरथव्यया
भं यस्य यस्मिन्भवने स तत्पतिः ॥२६॥

कुण्डली में बारह भाव (स्थान) होते हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—लग्न, वित्त, भ्राता, माता, पुत्र, शत्रु, पत्नी, आयु, भाग्य, पिता, मनोरथ तथा व्यय।

उक्त स्थानों को सुविधानुसार पहला, दूसरा, तीसरा आदि भी कहते हैं। कुण्डली के जिस स्थान में जो राशि हो, उसका स्वामी ही उस स्थान का अधिपति होता है।

केन्द्राख्या तनुमित्रसारनभसामापोक्लिमाख्याऽन्त्यरुक्-
त्र्यंकानां चतुरस्रमम्बुनिधनं ध्यंकं त्रिकोणाख्यकम्।
धीलाभद्रविणायुषां पणफराख्या त्रित्रिकोणं तपः
सोदर्य्यायरुजादिवामुपचयाख्योवता तदन्यौकसाम् ॥२७॥
पीडाख्या कथिता मृतिव्ययरुजां दुष्टत्रिकाख्ये मते
तत्रायुस्त्वति दुष्टभं तदितरर्क्षाणां सुगेहाभिधा।
रुग्रिःफं पतितं कुटुम्बमदयोः स्यान्मारकाख्या तथा-
ऽऽयुःसञ्ज्ञेह पराशरेण मुनिना पञ्चत्वदुश्चिक्ययोः ॥२८॥

पूर्वोक्त नामों के अतिरिक्त भावों का सामुदायिक नामकरण भी है। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम व दशम इन चारों स्थानों की **'केन्द्र'** संज्ञा है। तृतीय, षष्ठ, नवम व द्वाद [illegible] इनको **'आपोक्लिम'** कहते हैं। चतुर्थ व अष्टम को **'चतुरस्र'**, पांचवें व नवें को **'त्रिकोण'** कहते हैं। केन्द्र स्थानों से ठीक दूसरे चार स्थान (द्वितीय, पंचम, अष्टम, एकादश) **'पणफर'** कहलाते हैं।

नवां स्थान **'त्रित्रिकोण'** कहलाता है। तृतीय, षष्ठ, दशम व एकादश भावों की **'उपचय'** संज्ञा है। इन उपचय स्थानों के अतिरिक्त शेष आठ स्थान (१-२-४-५-७-८-९-१२) **'अनुपचय'** या **'पीड़ा'** स्थान कहलाते हैं।

षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश को 'त्रिक' या 'दुष्ट' स्थान कहते हैं। इनमें भी अष्टम को सर्वाधिक दुष्ट स्थान कहा गया है। इन दुष्ट स्थानों के अतिरिक्त नौ स्थान (१-२-३-४-५-७-९-१०-११) 'सुगृह' कहलाते हैं। षष्ठ-द्वादश को 'पतित' भी कहते हैं। द्वितीय व सप्तम 'मारक स्थान' तथा अष्टम व तृतीय 'आयु स्थान' कहलाते हैं। उक्त नामकरण महर्षि पराशर के वचन प्रामाण्य पर आधारित है।

लग्न कुण्डली के चार विभाग :

कामस्यैष्यलवाद्यमङ्गभगतांशान्तं समस्तं दलं
दृश्यं वामवपुस्तथोदितमथादृश्यार्द्धमन्यत्समम्।
दक्षाङ्गानुदिताभिधे निगदिते मानैष्यभागादिकं
पातालस्य गतांशकान्तमखिलं पूर्वार्द्धमन्यत्परम् ॥२९॥

लग्न स्पष्ट के भोग्य अंशों से तथा सप्तम भाव के गत अंशों तक कुण्डली को, **'अनुदित' 'दक्षिण'** (दायां) या **'अदृश्य'** खण्ड कहते हैं।

सप्तम भाव के भोग्यांश से लेकर लग्न के गत अंशों तक, **'दृश्य' 'वाम'** या **'उदित'** खण्ड कहते हैं।

इसी प्रकार दशम के भोग्यांश से चतुर्थ के भुक्तांश तक **'पूर्वार्ध'** तथा चतुर्थ के भोग्य से दशम के भुक्तांश तक **'उत्तरार्ध'** कहलाता है।

द्रेष्काण भेद से कुण्डली में शरीरांग कल्पना :

मूर्द्धेक्षणश्रवणगन्धवहाकपोल-
हन्वाननानि निगदेत्प्रथमे दृगाणे।
कण्ठः क्रमाद् भुजशिरोभुजपार्श्ववुक्का-
क्रोडानि नाभिरुदये त्रिलवे द्वितीये ॥३०॥
बस्तिश्च मेहनगुदे वृषणोरुजानु-
जंघांध्रयस्त्रिलवके त्रितये परे प्राक्।
षड्भेऽङ्गमङ्गभवनादिह वामदक्षं
तत्रोत्तमः प्रकुरुते तिललक्ष्ममत्स्यम् ॥३१॥
व्रणं खलः स्वस्वबलानुसारं
सहोत्थितं स्वर्क्षलवस्थिरस्थः

आगन्तुकश्चेत्परथा स सौम्य-
युक्तेक्षितो लक्षणमेव तत्र ।।३२।।

यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित हो तो कुण्डली में शरीर के अंगों का विभाग इस तरह करना चाहिए—

लग्न→सिर, द्वितीय द्वादश→आंखें, तीसरा-ग्यारहवां→कान, चौथा-दसवां→नाक,पांचवां नवां→गाल, छठा—आठवां→ठुड्डी तथा सप्तम→मुख।

द्वितीय द्रेष्काण उदित हो तो अंग विभाग इस प्रकार होगा— १→गला, २-१२→कन्धे, ३-११→भुजाएं, ४-१०→कुक्षि (बगल) ५-९→हृदय, ६-८→पेट तथा ७→नाभि होगा।

तृतीय द्रेष्काण के उदय पर १→पेडू, २-१२→लिंग व गुदा, ३-११→अण्डकोश, ४-१०→नितम्ब, ५-९→घुटने, ६-८→जंघा (पिण्डली) तथा ७→पैर समझना चाहिए।

पूर्वोक्त दक्षिण व वाम विभाग के आधार पर जो स्थान जिस खण्ड में पड़ता हो उससे उसी तरह वाले (दायें या बायें) अंग को समझना चाहिए।

जिस स्थान पर शुभ ग्रह हों वहां पर तिल या मस्सा होता है तथा जहां क्रूर ग्रह पड़े हों वहां पर घाव का निशान होता है।

यदि घाव कारक ग्रह जन्म समय अपनी राशि, अपने नवांश, स्थिर राशि या स्थिर नवांश में हो तो उक्त चिन्ह जन्म से ही होता है।

यदि उक्त ग्रह इस स्थिति में न हो तो अपनी दशा के भोग काल में चोट लगने से घाव होगा। यदि यह कारक ग्रह शुभ ग्रहों से दृष्ट अथवा युत होगा तो केवल चोट का निशान मात्र रहेगा, अन्यथा चिन्ह गहरा होगा।

लग्न बल के दो प्रकार :

सत्स्वामिभिर्बलयुतैः परिलोक्यमानं
लग्नं सवीर्य्यमघसंयुतलोकितं नो।
आदौ विलग्नभमनूनफलप्रदं स्या-
न्मध्ये समानफलदं चरमे तु तुच्छम् ।।३३।।

यदि लग्न स्थान को लग्नेश तथा शुभ ग्रह देखते हों तथा क्रूर ग्रहों की उस पर दृष्टि न हो तो लग्न को बलवान समझना चाहिए।

यदि विवाह लग्न या प्रश्न लग्न हो तो प्रथम द्रेष्काण में पूर्ण बली, मध्य द्रेष्काण में मध्यम बली तथा तृतीय द्रेष्काण में शून्यबली होता है। आशय यह है कि प्रथम द्रेष्काण में प्रश्न होने पर ही लग्न से जाना गया फल पूर्ण होगा। द्वितीय द्रेष्काण में आनुपातिक ढंग से फल की मात्रा मध्यम होगी तथा तृतीय द्रेष्काण में शुभ या अशुभ जैसा भी फलागम हो, वह पूर्ण नहीं होगा।

कीटेंऽघ्रिर्निखिलं बलं मनुजभेऽन्येष्वर्द्धमोजस्तनोः
साम्यं कान्तबलेन वृद्धिगृहगे प्राणेशि शक्त्युत्कटम्।
साच्छे युक्तविलोकिते सबलवित्सूरीश्वरैर्नापरै-
र्दृष्टाढ्ये दिनराशयोऽह्नि सबला अन्ये रजन्यां मतः॥३४॥

लग्न में वृश्चिक राशि हो तो लग्न पाद वली (१/४) होता है। यदि लग्न में (मिथुन, कन्या, तुला, धनु का पूर्वार्ध और कुम्भ) राशि हो तो पूर्ण वल होता है। शेष राशियों के होने से आधा बल होता है। साथ ही लग्न बल का विचार लग्न के स्वामी के वल के अनुसार भी करना चाहिए। स्वामी के वल के समान ही लग्न का बल होता है।

यदि लग्न का स्वामी शुक्र से युक्त हो अथवा बलवान् बुध, गुरु अथवा इनकी राशियों के स्वामी से अधिष्ठित या दृष्ट हो तथा अन्य ग्रहों की उस पर कोई दृष्टि न हो तो लग्न परम वलवान हो जाता है।

इसके अतिरिक्त राशियों के दिन रात्रि बल का ज्ञान भी लेना चाहिए। सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ ये राशियां दिन में बली होती हैं तथा मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु तथा मीन राशियां रात्रि में बली होती हैं।

यह 'प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में परिभाषा प्रकरण समाप्त हुआ।

२ | अथ कारक प्रकरण

प्रथम भाव का कारकत्व :

देहांकजात्याकृतिदेहमानप्रवाससामर्थ्यबलाबलानि ।
सुखासुखे कं प्रकृतिर्जनन्यास्तातो वयोमानजनिस्थलाख्ये ।।१।।
ताताम्बिका वर्णगुणस्वभावनिद्राभिमानावयवत्वचश्च ।
स्वप्नायती राजनयश्च शीलमेताद्विलग्ने निखिलं विचिन्त्यम् ।।२।।

लग्न कुण्डली के पहले स्थान से निम्नलिखित बातों का विचार करना चाहिए।

शरीर, शरीर पर पाए जाने वाले चिन्ह, कुल जाति रूप, शरीर का प्रमाण, विदेश में निवास, शक्ति, पराक्रम, कमजोरी, सुख, दुःख, सिर, प्रकृति (स्वभाव), नाना, बचपन, जवानी आदि अवस्थाएं, आयु, जन्म भूमि, दादी, शरीर का वर्ण, त्याग, शूरता आदि गुण, स्वभाव, नींद, अहंकार, शरीरांग, खाल, सपनों का फलाफल अथवा सुख शयन, बुढ़ापा, राजनीति तथा चरित्र। आशय यह है कि प्रथम स्थान इन सबका कारक है।

टिप्पणी—प्रथम स्थान तनु भाव होने के कारण शरीर, शरीरांग तथा शरीर की बनावट आदि का विचार इसी स्थान से किया जाता है। शरीर के सभी बाह्यांगों तथा आभ्यन्तर करणों का विचार भी इसी स्थान से करना चाहिए, ऐसा आचार्यों का मत है। पिता स्थान से चतुर्थ होने कारण पिता की माता (दादी) का तथा माता स्थान से दशम होने के कारण नाना का विचार युक्ति संगत है। यही पद्धति अन्य सम्बन्धियों के विषय में विचार करने के लिए भी अपनायी जा सकती है।

'उत्तर कालामृत' में भी ऐसा ही बताया गया है।

द्वितीय भाव का कारकत्व :

वित्तं कुटुम्बं मणिदक्षिणाक्षिवाग्वक्त्रविद्याबहुभाषणानि ।
स्वर्णादिकानां क्रयविक्रयौ च रत्नादिकानामपि सञ्चयश्च ।।३।।

दातृत्ववित्तोद्यमकृत्रिमाश्च वर्द्धिष्णुता चास्तिकपोषकत्वे।
गमागमस्येह विधिः करोत्थानृते च नासारसनाम्बराणि ॥४॥
मुक्ताफलं भुक्तिविशेषसत्य।मित्राणि मित्रं निजपूर्वजार्थम्।
दासार्थसिद्धी निधनस्यजालं प्रासन्नधान्ये विनयोऽर्थगेहात् ॥५॥

द्वितीय स्थान धन स्थान है, अतः इस स्थान से—धन, कुटुम्ब, रत्न, दायीं आंख, वाणी, मुख विद्या, ज्ञान, वाक्पटुता, सुवर्णादि धातुओं का क्रय विक्रय, दानशीलता, धन के लिए प्रयत्न, बनावट या प्रदर्शन की भावना, वृद्धि, ईश्वर में विश्वास, परिवार का उत्तरदायित्व, समीप दूर की यात्राएं तथा चलने का ढंग, नाखून, असत्यवादिता, नाक, जीभ, कपड़े, मोती, भोग, सत्यप्रियता, शत्रु, मित्र, पैतृक धन, नौकर, धन-लाभ, मृत्यु, विचार-पद्धति, प्रसन्नता, धान्य तथा विनयशीलता का विचार करना चाहिए।

टिप्पणी—धन, धन से किए जाने वाले कार्य तथा धन कमाने का प्रयोजन, ये सब बातें परस्पर सम्बद्ध हैं, अतः इनका इसी भाव से विचार किया जाता है। मुख, प्रकृति, स्वभावादि का विचार पहले भाव से भी बताया गया था। यह कथन परस्पर विरोधी नहीं है, अपितु '**भावाद् भावम्**···' के सिद्धान्त पर आधारित है। आशय यह है कि पहले स्थान की विचारणीय बातों को देखते समय इससे एक स्थान आगे अर्थात् 'दूसरे' स्थान पर विचार करना होता है। उदाहरणार्थ—आठवां स्थान 'मृत्यु' का है, किन्तु आठवें से आठवें अर्थात् तीसरे स्थान पर भी 'मृत्यु' का विचार करते समय दृष्टिपात आवश्यक है। यह बात सभी स्थानों पर समान रूप से लागू होती है।

तृतीय स्थान का कारकत्व :

भ्राता बलं साहसदक्षकर्णकरोपदेशांशुकभूषणानि।
प्रयाणकण्ठस्वरविक्रमक्षुच्छौर्य्याख्यवीर्य्यौषधयौधधैर्य्यम् ॥६॥
पित्रोर्मृतिर्भक्ष्यविशेषमूलफलाशनं स्वाम्बकमातुलादि।
वक्षोगलस्थानसहायभृत्यदास्यादि सर्वं सहजे विलोक्यम् ॥७८॥

तीसरे स्थान को 'भ्रातृ स्थान' कहते हैं। इससे अग्रनिर्दिष्ट वस्तुओं का विचार करना चाहिए—

भाई (छोटा), शक्ति, पराक्रम, दुष्कर कामों को करने का साहस, दायां कान, हाथ, उपदेश, वस्त्र, गहने, गमन, कण्ठस्वर, भूख, शूरता, तेज औषधियां, युद्ध कुशलता, धीरता, माता-पिता की मृत्यु, भोजन, अपने पिता के मामा आदि, छाती, गला, सहायक, नौकर, दास की स्त्रियां आदि।

टिप्पणी—भोजन से तात्पर्य सामान्यतया किए जाने वाले भोजन से नहीं है। परिस्थिति विशेष में दुष्ट भोजन यदि करने का अवसर आए तथा प्राणरक्षा आदि भय सम्मुख हो तो उस परिस्थिति-जन्य कष्ट में भोजन की साधारणातिसाधारणस्थिति का ही यहां ग्रहण होना चाहिए। **उत्तरकालामृत** में कहा गया है—"...... **सुहृच्चलन—कण्ठादुष्ट भोज्यादिकं,......स्वीयधर्मस्त्रिभात्।"**

चतुर्थ भाव का कारकत्व

सौख्याम्बिकाभवनवाहनयानबन्धु-
क्षेत्रक्षमोपवनचित्तगुणेष्टभूपाः।
मित्रं तरुनिधिसुगन्धतडागवापी-
कूपाम्बुगोश्वशुरहर्म्यचतुष्पदादि ॥८॥
विद्याधृताङ्गनजसौख्यबहिःसुखानि
वक्षःस्थलादि जनकोद्यमपूःसमान्नम्।
भोज्यादिकं शयनसौख्यकमात्मवृद्धिः
स्कन्धासनं सममदोऽम्बुनि चिन्तनीयम् ॥९॥

चौथे स्थान से सुख, माता, घर (मकान), वाहन, यात्राएं, अपने सगोत्र, खेत, अचल सम्पत्ति, बाग, मन, शूरता आदि गुण, मनोरथ, राजा, मित्र, पेड़, खजाना, सुगन्ध, तालाब, बावड़ी, कुआं, जल, गाय बैल आदि पशु सम्पत्ति, श्वसुर, अच्छा मकान, बंगला आदि, चौपाये पशुओं की सम्पत्ति, विद्या, अविवाहित स्त्री का सुख (प्रेम-प्रसंग) बाहरी सुख, छाती, पिता का व्यवसाय, गांव, भोजन, निद्रा का सुख, शरीर-सुख, कन्धे, सिंहासन (राज्याधिकार) का विचार करना चाहिए।

टिप्पणी—प्राचीन काल में यात्राओं में प्रयुक्त वाहनादि प्रायः घोड़े, ऊंट, हाथी आदि अथवा इनके द्वारा खींचे जाने वाले रथादि ही हुआ करते थे। यहां एक जगह 'गौ' शब्द का प्रयोग दूध देने वाले तथा

खेती में प्रयुक्त होने वाले पशुओं के अर्थ में किया गया है। दूसरी जगह 'चतुष्पदादि' शब्द से सवारी के पशु ही अभीष्ट हैं। आजकल पशुओं का स्थान 'कार' (मोटरगाड़ी) आदि ने ले लिया है, अतः ऐसे स्थलों पर चतुष्पद पद की संगति मोटरगाड़ी आदि से बिठा लेनी चाहिए।

चतुर्थ भाव का विशेष विचार

गेहेज्याभ्यां सौख्यचिन्ता विधेया
चिन्ताऽम्बायाश्चन्द्रतोऽम्बानिकेतात्।
बन्धोः काव्यात्तत्सुखाद्वा सुगन्धा-
लंकाराणां यानवस्त्रादिकानाम् ॥१०॥
प्रोक्ता हितात्प्राप्तिगृहात्तदीशतो
यानस्य चिन्ता व्ययतोऽपि केनचित्।
सोत्थोऽनुजेऽस्त्रात्कुलमार्किकालतः
कान्ता विचिन्त्या कवितः कलत्रभे ॥११॥

चतुर्थ भाव से सुख का विचार करते समय बृहस्पति के बलाबल आदि का भी विचार कर लेना चाहिए। दोनों के तुलनात्मक व गुणात्मक अध्ययन से ही अपने निष्कर्ष को पुष्ट करना चाहिए। इसी तरह 'माता' के लिए चतुर्थ भाव व चन्द्रमा तथा सुगन्धि, गहने, वाहनादि के लिए शुक्र व चतुर्थ भाव अथवा जहां शुक्र स्थित हो उससे चौथे स्थान का भी विचार कर लेना चाहिए।

वाहन का विचार करते समय चतुर्थ, एकादश तथा चतुर्थेश व एकादशेश का विचार कर लेना चाहिए। किन्हीं आचार्यों का मत है कि वाहन का विचार बारहवें स्थान से भी किया जाना चाहिए। मंगल से तीसरे स्थान को भाई के लिए, शनि से आठवें स्थान को 'वंश' के लिए, एवं शुक्र से सातवें स्थान को स्त्री के लिए देख लेना चाहिए।

टिप्पणी—भावों व ग्रहों के सम्बन्ध से भाई व वंशादि का निर्णय करना चाहिए। यहां पर यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि पिता का विचार करते समय सूर्य से नौवें स्थान को भी देखना चाहिए। माता के लिए चन्द्र से चौथा स्थान, बुध से छठे स्थान में मातृपक्ष तथा बृहस्पति से पांचवें स्थान में भी पुत्रादि का विचार करना चाहिए। जैसाकि **'संकेतनिधि'** में बताया गया है—

"पिताऽम्बरेऽर्कान्नवमे च चिन्त्यो
मातोडुपादम्बुनि सोदरेऽस्त्रात्।
भ्राता बुधाद्वैरिणि मातुलादि,
जीवात्सुतः पंचमतो विचार्यः।"

पंचम भाव का कारकत्व

सूनुः शिल्पं गर्भनीतिस्थिती धी-
विद्या तुन्दं देवसेवा प्रबन्धः।
मंत्रो यंत्रं तातभावो विवेको
भूपो मंत्री शक्तिपुण्ये रहस्यम् ॥१२॥

वाराङ्गनालिङ्गनदूरचिन्ते
गाम्भीर्य्यसौशील्यमनोजपाश्च।
वृत्तान्तसंलेखनतातवित्ते
छत्रं विनेयो घनता तनूजात् ॥१३॥

पांचवें स्थान से विचारणीय विषय ये हैं—पुत्र, कला-कौशल, गर्भ की स्थिति, नीतिकौशल, बुद्धि, विद्या, पेट का बढ़ना (तुन्दिलता) देवताओं में विश्वास, प्रबन्ध करने की क्षमता, मंत्रसिद्धि अथवा गुप्त बातों की रक्षा की प्रवृत्ति, यंत्रादि (तन्त्रशास्त्रोक्त) सिद्धि, पिता की विचारधारा, विवेक बुद्धि, राजत्व की प्राप्ति अथवा भूमिपतित्व, मंत्री, पुण्य, रहस्य, वेश्यागमन में प्रवृत्ति, दूर देश की चिन्ता, गम्भीरता, सुशीलता, मन की स्थिरता, जप, वार्तालेखन (कथा प्रबन्धादि की रचना सिद्धता) पिता का धन, छत्र, शिष्य तथा व्यक्तित्व की प्रभावोत्पादकता (घनत्व)।

टिप्पणी—विद्या, बुद्धि तथा सन्तान इन तीनों का विचार मुख्यतः इस स्थान से किया जाता है। कला-कौशल पर विचार करते समय व्यक्ति के कार्य क्षेत्र तथा अभिरुचि का विचार करते हुए उसकी सम्बन्धित कला की गवेषणा उचित होगी, अन्यथा 'शिल्प' शब्द का प्रयोग यहां चौसठ कलाओं तथा शिल्पों के अर्थ में किया गया है। साथ ही काम करने की लगन तथा मजबूत इरादे का भी विचार इसी स्थान से किया जाना चाहिए। कवित्व शक्ति का विचार यद्यपि वाणी के

प्रसंगवश दूसरे स्थान से किया जाना चाहिए लेकिन उस काव्यकला के लिपिबद्ध रूप तथा काव्यों की रचना की स्थिति का विचार पांचवें से ही किया जाता है। कविता करने की शक्ति भर होना तथा कविता करना ये दो बातें व्यवहार में प्रायः अलग देखी जाती हैं।

विचिन्तयेत्सन्ततिमुद्गमाद्विधो-
र्मतेर्मदाद्वाक्पतितस्तदात्मजे।
सार्य्यैस्तपोनन्दनकामपैस्तथा
सन्तानचिन्तां मतिमान्विनिर्दिशेत् ॥१४॥

सन्तान का विचार करते समय, लग्नस्थान, चन्द्रस्थान, पंचम-स्थान, सप्तम स्थान, बृहस्पति तथा उससे पांचवां स्थान, नवमेश, पंचमेश तथा सप्तमेश इन सब की भी तुलनात्मक गवेषणा आवश्यक है।

टिप्पणी—सन्तान विचार के प्रसंग में नवें स्थान को पांचवें से पांचवां होने के कारण सम्मिलित किया गया है। बृहस्पति सन्तान का कारक है तथा लग्न चन्द्रमा व सप्तम स्थान माता-पिता से सम्बद्ध हैं। अतः इन पर भी विचार करना युक्तिसंगत है। कहा गया है कि—

'नाथैः कलत्रात्मजधर्मभानां पुत्रार्थचिन्तां कथयेत्सजीवैः।'

बुध व बुद्धिमानी का सम्बन्ध

चेतनां चिन्तयेच्चन्द्रसूनोः सूनुगृहात्ततः।
जनयित्रीसहोदर्य्यं बोधनाद्वैरिभावतः ॥१५॥

बुध व पांचवें स्थान से बुद्धि (WIT) का भी विचार किया जाता है। साथ ही बुध व छठे स्थान के पारस्परिक सम्बन्ध से माता तथा मामा का भी विचार किया जाना चाहिए।

टिप्पणी—'चेतना' शब्द का अर्थ यहां बुद्धि किया गया है। 'संविद' शब्द व 'चेतना' शब्द संस्कृत कोश-ग्रन्थों में समानार्थी हैं तथा संविद का अर्थ बुद्धिमानी—विषय को शीघ्र ग्रहण करने की क्षमता (WIT) होता है।

षष्ठ भाव का कारकत्व

वैरी रुजेर्म्ममधुरादिषडौपदंशा-
श्चिन्ता व्यथा भयकटी पशुमातुलौ च।
नाभिः क्षतं व्यसनतस्करविघ्नशंका-
सापत्नमातृसमराक्षिरुजोऽरिभावात् ॥१६॥

छठे स्थान को इन बातों का कारक समझना चाहिए—शत्रु, रोग, घाव, मधुरादि छह रस, चिन्ता, व्यथा, भय, कमर, पशु, मामा, नाभि, अंग-भंग, विपत्ति, चोर, विघ्न, शंका, सौतेली माता, युद्ध, आंखों की बीमारी आदि :

टिप्पणी—मधुर (मीठा) अम्ल (खट्टा) लवण (नमकीन) कटु (कड़ुवा) तिक्त (तीखा) तथा कषाय (कषैला) ये छह रस (स्वाद) होते हैं। इनमें से किस में व्यक्ति की विशेष अभिरुचि होगी ? इसका विचार छठे स्थान से किया जाता है।

उत्तरकालामृत के अनुसार इस स्थान से नेत्रव्याधि के साथ-साथ मूत्र की बीमारियां, पेचिस, शूल रोग, विष सम्बन्धी कष्ट तथा जेल यात्रा आदि का भी विचार किया जाता है। उन्माद, फोड़े-फुन्सी तथा क्षय रोग आदि का भी विशेष विचार ग्रह सम्बन्ध से इसी स्थान से किया जाना चाहिए।

विकलांगता का विशेष विचार

सञ्चिन्तयेत्क्षतरिपुव्यसनानि रोगान्
भौमारितः किमु गदान् गदभावयातैः।
गुह्यान्त्यगैर्गगनगैर्गदगेहपेन
यद्वा तदन्वितखगैः परिचिन्तयेद्वित् ॥१७॥

रोगों का विचार करते समय छठे स्थान तथा मंगल का विशेष विचार करना चाहिए। घाव या अंग-भंग की स्थिति, शत्रु, दुराचरण तथा रोग ये छठे भाव तथा मंगल से सम्बद्ध हैं।

छठे, आठवें व बारहवें स्थान में स्थित ग्रहों से तथा षष्ठेश या उसके साथ विद्यमान ग्रहयोग से भी रोगादि का विचार किया जाता है।

सप्तम भाव का कारकत्व

जायाविवाहपतिकामपदाप्तिबस्ति-
नष्टार्थवाददधिसूपपयोगुडादि ।
यात्राप्रपास्वतनुमृत्युवणिक्क्रियादि-
मृष्टान्नपानवदनानि पितामहोऽस्तात् ॥१८॥

स्त्री, विवाह, पति, कामशक्ति, पद की प्राप्ति, बस्ति (पेडू), खोया धन, वाद-विवाद, दही, दाल, दूध व गुड़ आदि, यात्रा, प्याऊ, अपनी मृत्यु, व्यापार, मिष्ठान्न तथा दादा का विचार सातवें स्थान से करना चाहिए।

टिप्पणी—यहां 'जाया' शब्द का तात्पर्य सामान्य स्त्री से न होकर 'जायतेऽस्याम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सन्तानोत्पत्ति करने वाली स्त्री से है।

यहां प्रयुक्त भोज्य पदार्थों के नाम हमारे विचार से लाक्षणिक हैं। आशय यह है कि व्यक्ति को प्राप्त होने वाले भोजन की उत्तमता का विचार इसी स्थान से किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त चोरी से धन कमाने की प्रवृत्ति, दत्तक पुत्र, विवाहित स्त्री से अन्य प्रणय सम्बन्ध, पत्नी का अरिष्ट, नाच, गाना, बाजा, पान, शराब आदि का शौक तथा उद्देश्य से भटक जाना, मूत्र व मूत्राशय, वीर्य सम्बन्धी विषय तथा दूर स्थान पर रखे गये (विदेशादि में) धन का विचार भी सातवें स्थान से करना चाहिए।

स्त्री का विशेष विचार

कलत्रचिन्ता भमदार्थपैर्वा
स्त्रीकारकज्ञेज्यसितेन्दुमध्ये ।
प्राणी खगो योऽत्र ततः समस्तं
निरूपयेद्वर्णमुखं गृहिण्याः ॥१९॥

सप्तमेश, द्वितीयेश तथा शुक्र से स्त्री का विचार करना चाहिए। स्त्रीकारक ग्रह तथा स्त्री ग्रह (बुध, चन्द्र, शुक्र) तथा बृहस्पति में जो सबसे अधिक बलवान हो, उसके ही शील, वर्ण व स्वभावानुसार स्त्री का विशेष ज्ञान प्राप्त करें।

टिप्पणी—यहां पर 'भ' शब्द का अर्थ एकाक्षर कोश के अनुसार शुक्र ग्रह किया है। 'भं नक्षत्रे गभस्तौ स्त्री पुंसि स्याद् भृगुनन्दने।'

अष्टम भाव का कारकत्व

आयुर्मृत्युरथान्तकारणमथो मृत्युप्रदेशो गति-
मोक्षाद्यं गुद्गुह्यदेशसमितो दुर्गादिरोधादिकम्।
स्तैन्यं व्याधिभवो भृतिः परिभवर्णादानदानान्यकं
नद्युत्तारकवस्तुनाशविवराद्यं बन्धनं नौमुखम् ॥२०॥

दंशोऽध्ववैषम्यमरातिभीत्य-
स्त्रसंकटे जीवनजीवघातौ।
कच्छेदपापान्नसुखांकुराति-
मनोव्यथापत्त्यलसा विनाशात् ॥२१॥

आठवें स्थान से जीवन की अवधि, मृत्यु, मृत्यु का कारण, मृत्यु का स्थान, मरणोपरान्त गति, मोक्ष, गुप्त स्थान, (गुदा, लिंग, योनि), युद्ध, किले आदि जीतना, चोरी की आदत, रोग, रोग का कारण, वेतन, अपमान, कर्ज का लेन-देन, सूदखोरी, दुःख, नदी आदि का लांघना, पदार्थ हानि, पृथ्वी तल—गुफादि में प्रवेश, कैद, नौका यात्रा (समुद्र यात्रा), जहरीले जीव का दंश (डंक), रास्ते की कठिनाइयां, शत्रु-भय, शस्त्रों का कष्ट, जीवन का बचना, हत्या करना, सिर काटना, पापकर्म, अन्न का सुख, नयी पैदावार, गहन मानसिक पीड़ा, मुसीबत व आलस्य आदि का विचार किया जाता है।

टिप्पणी—खोया या गड़ा हुआ धन भी आठवें स्थान से सम्बद्ध होता है तथा वैराग्य का विचार भी यहीं से किया जाना चाहिए।

'कच्छेद' के 'क' का अर्थ मेदिनीकोश के अनुसार 'सिर' है। 'सुखशीर्ष जलेषुकम्!' इति

आयुर्दाय का विचार

होरालेखेशेन नादाधिपेन
दिष्टान्ताधीशेन भास्वद्भुवा च।

आयुर्दायं नेष्टहेतुं समस्तं
पुंसां प्राज्ञाश्चिन्तयेयुः प्रवीणाः ।।२२।।

मृत्यु, आयु (LIFE) तथा मृत्यु के कारण का विचार विद्वानों को लग्न स्थान, दशम स्थान तथा अष्टम स्थान और इनके अधिपतियों से करना चाहिए।

नवम भाव कारकत्व :

भाग्यं भक्तिगुरू वृषोऽथ दुरितं प्रस्थानधर्म्मक्रिये
दानं यज्ञतपः प्रभावविमलस्वान्तान्धुहर्म्योरवः।
तीर्थाप्तिः सहजाङ्गनाऽनुजफलं तातस्य पौत्रोदयः
स्नेहो देवगृहं स्ववामचरणाष्टैश्वर्य्यनागाः शुभात् ।।२३।।

भाग्य, नौ प्रकार की भक्ति, तीर्थ यात्रा, गुरू, धर्मसाधन, पाप, दान, यज्ञ, तपस्या, लोक में प्रभाव, हृदय की स्वच्छता, कुएं, बड़े मकान (बंगला), जांघ, तीर्थक्षेत्र प्राप्ति (दर्शन या निवास), भाई की स्त्री, भाई का शुभाशुभ, अपने पुत्र का परिज्ञान, स्नेह की भावना, देव मन्दिर निर्माण, अपना बायां पैर, आठों सिद्धियां तथा हाथी की प्राप्ति (उत्तम राजसी वाहन) का विचार नवें स्थान से करना चाहिए।

नवम भाव का विशेष विचार :

स्वामी गुरुर्मातुलभाग्यताता
धर्म्मे विचिन्त्या नवमोऽङ्गिरोभ्याम्।
विचिन्तयेद्भाग्यतपःशुभानि
गुरुप्रभावौ सुकृतं विपश्चित् ।।२४।।

अपना स्वामी, गुरू, भाग्य, मामा तथा पिता ये सभी पदार्थ इसी भाव से देखे जाते हैं। भाग्य, तपस्या, कल्याण, गुरू, प्रताप तथा पुण्य का विचार गुरू व नवें स्थान की स्थिति से करना चाहिए।

दशम भाव का कारकत्व

कर्माज्ञाकृषितातजीवनयशोव्यापारसिंहासन-
राज्यप्राप्ति महत्पदाप्तिशयनालंकारमानान्वयाः।

प्रव्रज्याऽऽगमखे प्रवासकमृणं विज्ञानविद्यांशुके
वृष्टावृष्टिनरेशमानभृतका जान्वम्बराच्चिन्तयेत् ॥२५॥

शुभाशुभ कर्म, आदेश का प्रसार व प्रभाव, कृषि, पिता, आजीविका, यश, व्यापार, राजा का आसन, राजपद की प्राप्ति, ऊंचा पद, नींद, गहने, अभिमान, खानदान, सन्यास, शास्त्र ज्ञान, आकाश, दूर देश में निवास, ऋण, शिल्पविद्या, विज्ञान, वस्त्राभूषण, वर्षा, सूखा पड़ना, राजसम्मान, नौकर-चाकर या अधीनस्थ कर्मचारी तथा घुटना, इन सबका विचार दसवें स्थान से करना चाहिए।

टिप्पणी : आकाश से तात्पर्य नभोयात्रा, आकाश में जाना, घूमना, ग्रहों पर जाना अथवा आकाश मार्ग से दूर देशों की यात्रा से है। विमान-दुर्घटना आदि का विचार आठवें तथा दसवें स्थान, स्थानाधिप तथा दृष्टिकारक ग्रहों की गवेषणा से किया जाना चाहिए।

विज्ञानविद्यागमकर्म्मजीवन-
व्यापारसन्न्यासयशांसि भूषणम्।
आज्ञां च मानं शयनांशुके कृषिं
विचिन्तयेज्ज्ञेज्यशनीनखेशतः ॥२६॥

विज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान, शास्त्रों का अध्ययन, कर्मफल, आजीविका, व्यापार, सन्यास, यश, गहने, आदेश, मान, निद्रा, वस्त्र खेती, इन सव पदार्थों पर विचार करते समय बुध, गुरू, शनि, सूर्य तथा दशमेश के सम्बन्ध की गवेषणा कर लेनी चाहिए।

दशम भाव का विशेष विचार :

क्रतोः फलं ज्ञेज्यरवपैस्तनोर्दिवी
नाद्वीक्षणे वेनसुतांकभैः पिता।
चिन्त्यो दिवेनो निशि मन्दगः पिता
सौख्यं पितुस्तद्बलसन्निभं मतम् ॥२७॥

यज्ञ का फल जानने के लिए बुध गुरू व दशमेश का विचार करना चाहिए।

लग्न से दसवें स्थान, सूर्य से नवें स्थान, सूर्य, लग्न से पांचवें व नवें स्थान से पिता का शुभाशुभ फल जानना चाहिए।

दिन में सूर्य तथा रात में शनि पिता के कारक ग्रह हैं। इनके बलाबल से पिता के शुभाशुभ का विचार करना चाहिए।

एकादश भाव का कारकत्व :

द्रव्याप्तिजंघायुगले स्वदक्षां-
घ्र्यदक्षबाहू अनपत्यता च।
प्राप्तिः सुतायास्तनयस्य तन्वी
नाशो सुतानां शिविकारथादि ।।२८।।
आन्दोलिका वाहनवाजिभूषे-
भस्वर्णवस्त्रामरसंघपूजाः।
वामश्रुतिमङ्गलमण्डनादि
विद्याप्तिपितृव्यसदादि लाभात् ।।२९।।

ग्यारहवें स्थान से, धनलाभ, दोनों पिंडली, अपना दायां पैर, बायां हाथ, सन्तानहीनता, कन्यासन्तति, पुत्रवधू, पुत्र का नाश, पालकी-रथ डोली-घोड़ा-हाथी आदि वाहन, सोना, वस्त्र, देवताओं की पूजा, बायां कान, कल्याण प्राप्ति, सजने-संवरने की आदत, विद्या प्राप्ति, चाचा तथा शुभ कर्म का विचार करना चाहिए।

टिप्पणी : यहां 'सोना' शब्द से तात्पर्य सोने से बनवाए जाने वाले गहनों से भी है।

उपर्युक्त पदार्थों के अतिरिक्त ससुर से होने वाला सम्पत्ति लाभ, माता का अनिष्ट, धन कमाने की शैली तथा पूर्वजन्म का भी विचार यहीं से किया जाना चाहिए।

द्वादश भाव का कारकत्व

व्ययः समस्तो विभवस्य नाशो
व्ययः सुयज्ञेषु धनस्य हानिः।
ऋणांघ्रिदूराटनबन्धनादि
स्वापादिसौख्यं विकलत्वदण्डौ ।।३०।।

क्षे: क्रिया दुर्गतिदानलब्धि
दातृत्ववामाक्षिजलाशयादि।
तातानुजो वैकृतभोगपूर्वे
मंत्री विवाहः पतनं रिपूणाम् ॥३१॥
वृत्तान्तकोऽप्युद्वहनं पितुः स्वं
निर्बन्धबाधे सदसत्क्रियादि।
जारत्वजायाक्षतिदीनताऽस-
त्क्षयिष्णुतानागहयादि रिःफात् ॥३२॥

व्यय, सम्पत्ति का नाश, धन हानि, शुभाशुभ कार्यों में धन का विनियोग, कर्ज, पैदल यात्राएं, कारागार, निद्रा, विकलांगता, दण्ड (सजा), कृषि कार्य, दुर्गति, दान प्राप्ति, दानशीलता, बायीं आंख, तालाब, पैर, चाचा, शरीर का विकार (बड़े रोग), स्त्री सुख, मंत्री, विवाह, ऊंचे स्थान से गिरना, शत्रुओं की गतिविधि, उत्तरदायित्व का निर्वाह, पिता का धन, हठ, कष्ट, शुभाशुभ कर्म, परस्त्रीगामित्व, स्त्रीहानि, निर्धनता, अशुभ हाथी घोड़े तथा हानि (शारीरिक, मानसिक, आर्थिक) का विचार बारहवें स्थान से किया जाता है।

द्वादश भाव का विशेष विचार :

दातृत्वदूराटनदुर्गतीस्तथा-
स्वापादिसौख्यं विभवं धनक्षयम्।
जघन्यगेहात्तदधीशतः पपी-
कलेवरोत्थेन च चिन्तयेद्बुधः ॥३३॥

दानशीलता, दूरदेश की यात्राएं, बुरी गति, (शरीर कष्ट) निद्रा का सुख, वैभव तथा वैभव का नाश—इन सब विषयों का विचार बारहवें स्थान व स्थानाधिपति और शनि से करना चाहिए।

भाव चिन्तन का प्रकार :

चिन्त्यं फलं यस्य गृहस्य तद्गृहं
विलग्नमेवं परिकल्प्य देशिकाः।
ततः फलं द्वादशभावसम्भवं
वदन्ति तद्रूपधनादिकं क्रमात् ॥३४॥

जिस स्थान का विचार करना हो, उसी स्थान को लग्न की तरह मानकर, उससे आगे के धन, सहज, सुखादि भावों की स्थिति के अनुसार फलादेश करना चाहिए।

टिप्पणी : यथा धन स्थान का विचार करते समय उसे ही लग्न मानकर धन स्थान के विचारणीय विषयों का रूप, धन, सुख, विद्या, रोग, जीविका आदि का विचार भावक्रम से ही करना चाहिए। भावचिन्तन का यह एक प्रकार है। मंत्रेश्वर का भी यही कथन है।

भावों के कारक ग्रह :

स्युः कारकाः कायगृहाद्रविर्गुरुः
कुजो ज्ञचन्द्रौ गुरुरैनिरोहितौ।
सितोऽसितः सूरिसहस्रगू गुरु-
सौम्येनसौराः सचिवोऽसितद्युतिः ।।३५।।

प्रथम स्थान का सूर्य, धन स्थान कारक गुरू, भ्रातृकारक मंगल, सुख स्थान कारक बुध व चन्द्र, पुत्र स्थान कारक बृहस्पति, शत्रु स्थान कारक शनि व भौम, स्त्री स्थान कारक शुक्र, मृत्यु स्थान कारक शनि, भाग्य स्थान कारक बृहस्पति व सूर्य, कर्म स्थान कारक गुरू-बुध-रवि व शनि, लाभ स्थान कारक गुरू तथा व्यय स्थान कारक शनि ये ग्रन्थकार के मतानुसार भावों के कारक ग्रह हैं।

पराशर के मत से कारक ग्रह :

रवीज्यास्त्रेन्दुगुर्वारकाव्यार्कीज्यज्ञसूरयः।
पातंगिःकारकाः पौराद्वदेदिति पराशरः ।।३६।।

महर्षि पराशर के मतानुसार भावों के कारक ग्रह क्रमशः पहले स्थान से शुरू कर बारहवें स्थान तक इस प्रकार हैं—

सूर्य, बृहस्पति, मंगल, चन्द्र, बृहस्पति, मंगल, शुक्र, शनि, गुरू, बुध, गुरू तथा शनि।

भावस्य कारकखगादपि तूक्तरीत्या
चिन्त्यं फलं जनकमातृसहोदराणाम्।

अम्बासहोत्थतनुभूदयितानुगानां
प्रद्योतनप्रमुखपुष्करगस्य राशेः ॥३७॥

जिस तरह पहले धनादि भावों को लग्नवत् मानकर फलादेश करने का निर्देश किया है, उसी तरह पिता, माता, भाई, मामा, चाचा, नौकर आदि के विशेष कारक ग्रहों (आगे बताए जा रहे हैं।) तथा इनसे सम्बन्धित भावों का विचार करने के साथ ही सूर्यादि कारक ग्रह, जिस राशि में विद्यमान हों, उसे भी लग्न मान कर पूर्वोक्त रीति से पिता-माता आदि के द्वादश भावगत फलाफल का ज्ञान किया जा सकता है।

चिन्तन प्रकार का उदाहरण :

तातस्वरूपं तपनस्थराशे-
द्वितीयगेहेन चयं प्रकाशम्।
तृतीयतस्तद्गुणसोदरादि
चतुर्थतस्तज्जननीं सुखं च ॥३८॥
प्रबन्धभावाद् धिषणां प्रसादं
द्वेष्याद् व्यथारीन् जनकस्य दोषम्।
रोगं मदात्तन्मदमारपूर्वं
तदायुरन्तं व्यसनं विनाशात् ॥३९॥
पुण्यं शुभं तज्जनकं तपोभाद्
व्यापारमभ्रात्परिचिन्तयेत्सन्।
लब्धेः स्वलाभं व्ययमन्त्यगेहा-
चचन्द्रादितोऽपीति फलं विचिन्त्यम् ॥४०॥

सूर्य जिस राशि में विद्यमान हो, उस स्थान से पिता के स्वरूप व स्वभावादि का विचार करे। सूर्याधिष्ठित राशि से दूसरे स्थान से पिता का सम्पत्ति धन, तीसरे स्थान से उसके भाई आदि, चौथे स्थान से पिता की माता व सुख, पांचवें स्थान से पिता की बुद्धि व प्रसन्नता, छठे स्थान से पिता की पीड़ा, शत्रु रोग तथा दोषादि, सातवें स्थान से अहंकार तथा कामदेव, आठवें से पिता का जीवन काल तथा दुर्व्यसन, नवें स्थान से पिता का पुण्य-कल्याण तथा दादा, दसवें से व्यापार,

ग्यारहवें से धन लाभ तथा बारहवें स्थान से पिता के व्यय का पूर्वानुमान विद्वानों को करना चाहिए।

इसी परिपाटी से अन्य कारक ग्रहों की कुण्डली से अन्यान्य सम्बन्धियों का शुभाशुभ जाना जा सकता है।

तत्तद्‌गृहात्कारकतः प्रकल्पये-
दितीह तत्तत्पितृमातृपूर्वकान्।
तत्कारके तद्‌भवने तदीश्वरे
शौर्य्यान्विते तद्‌गृहसौख्यमुच्यते ॥४१॥

इस तरह सम्बन्धी भाव, भावेश तथा सम्बन्धित कारक ग्रह से सम्बन्धित प्राणी या पदार्थ के शुभाशुभ फल का विचार किया जाना चाहिए।

स्थान, स्थानाधिपति, व कारक के बली होने पर उस भाव से सम्बन्धित शुभ फल का निर्देश करना चाहिए।

ग्रहों की कारकत्व व्यवस्था

सूर्य का कारकत्व

चेतःशुद्धिरमाभिमानजनकात्मारोग्यताशक्तिधी-
कार्य्यौजांसि कटुप्रभावदहना उष्णोऽक्षिरुङ् मर्त्यपः।
राज्यं रक्तपटश्चतुष्पदतृणे मुक्ताः खपो वृद्धता
व्योमेक्षाशुचिरक्तकण्टकतरुज्ञानोदया भास्वतः ॥४२॥

मन की शुद्धि, लक्ष्मी, अभिमान, पिता, शरीर (आत्मा) आरोग्य, सामर्थ्य, बुद्धिबल, शारीरिक ओज, कटु व तिक्त रस, प्रताप, अग्नि, गर्मी, नेत्रों के रोग, राजयोग या राजा, राज्य, लाल कपड़ा, पशु, वनस्पति, मोती, आकाश स्वामित्व, बुढ़ापा, आकाश दृष्टि, पवित्रता, लाल रंग, कांटेदार झाड़ियां तथा ज्ञानोदय का विचार सूर्य से करना चाहिए।

टिप्पणी : उत्तरकालामृत के उल्लेखानुसार सूर्य से उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त इन विषयों का भी विचार किया जाना चाहिए। वन पर्वतों में विहार, पशु भय, लोक व्यवहार, महाराजाधिराजत्व,

सिर के रोग, सौराष्ट्र (गुजरात का एक भाग) का आधिपत्य मध्याह्न में प्रबलता, लम्बा क्रोध तथा नदियों का किनारा।

चन्द्र का कारकत्व :

माता मतिर्धवलचामरकीर्त्तिसम्पु-
च्छीतज्वराः सुखकलाहृदयं दयाहृत्।
मध्यं वयो झषमुखा जलजास्तपस्वी
राजप्रसादलवणक्षतजानि पुष्टिः ॥४३॥

आमोदगोधूममधुप्रसाद-
लावण्यधावल्य वलक्षवर्णाः।
दोर्व्याधिरौप्ये गमनाम्लकौ च
जीवश्च वासो मृदुलं मृगांकात् ॥४४॥

माता, बुद्धि, सफेद चंवर, कीर्ति, सम्पत्ति, शीतज्वर, सुख, कला, मन, दयालुता, मध्यावस्था, मछली आदि जल जन्तु, तपस्वी राजा, राजप्रासाद, नमक, घाव, शरीर की पुष्टि, गन्ध, गेहूं, शहद, प्रसन्नता, लावण्य, धवलता, सफेद रंग, बाजुओं के रोग, चांदी, यात्राएं, खट्टापन, प्राणी तथा कोमल बारीक कपड़े, इन सबका कारक चन्द्रमा है।

टिप्पणी—चन्द्रमा से अधोनिर्दिष्ट विषयों का विचार भी श्री कालिदास के कथनानुसार करना चाहिए—

ब्राह्मण, कफ प्रकृति, स्मृति, निद्रा सुख, काम शक्ति, मुखकान्ति, पार्वती की भक्ति, कार्यसिद्धि, पश्चिम दिशा, नौरत्न, रक्त व धातु तथा स्फटिकादि पत्थर।

मंगल का कारकत्व

सेनाधिपत्यं प्रभुता महत्त्वं
पराक्रमारातिपरापवादाः।
संग्रामभूमी करवालकुन्त-
प्रहारविख्यातिगुणामयाश्च ॥५५॥
सहोदरः साहसबान्धवौ च
शौर्य्यं बलं मूर्खनरेशचोराः।

धृतिश्चतुष्पाद्रुधिरप्रियश्च
मांसाशितिक्ते कटुकः कुसूनोः ॥४६॥

सेनानायकत्व, प्रभुता, महत्त्व, पराक्रम, शत्रु, निन्दा, युद्ध, जमीन-जायदाद, तलवार, भाला, शस्त्र प्रहार, प्रसिद्धि, रूप सत्त्वादि गुण, रोग, भाई, साहसिक कार्य, बन्धु बान्धव मित्रादि, शूरता, सेना, मूर्ख राजा, चोर, धैर्य, चौपाये, पशु, रक्त, वस्तुप्रियता, मांसाहारी, तीखारस, कड़वा रस, इन सबका कारक मंगल है।

टिप्पणी : पित्त, राजसेवा, रात्रि के अन्तिम प्रहर में बल, सुनार, मूत्रकृच्छ रोग, अग्निदाह, धनुर्विद्या, वाग्मित्व आदि का भी विचार **'उत्तरकालामृत'** में मंगल से ही बताया गया है।

बुध का कारकत्व :

वाक्कर्म्म विद्या विनयो विवेको
मित्रं सगोत्रो गणितं श्रुतिश्च।
विद्वान् शुचिर्मातुलसंततिश्च
शिल्पी कसाणो मृदुवाक् त्रिदोषः ॥४७॥

वाणिज्यदुःस्वप्नशमा नपुंसो
वेदान्तमातामहयंत्रमंत्राः।
वाजी भयो नर्त्तनकोशसौम्या
वायव्यकाष्ठाप्रियगोपुरे ज्ञात् ॥४८॥

वाणी का व्यापार, वाक् कौशल, विद्या, विनय, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के निर्णय की शक्ति, मित्र, सगोत्र बान्धव, गणित विद्या, वेद-ज्ञान, विद्वान्, पवित्र, ममेरे भाई बहन, कारीगर, कलाकार, कषगकर्म, मीठे वचन, वात-पित्त-कफ की समानता, व्यापार, दुःस्वप्न, कामक्रोधादि की शान्ति, नपुंसक, वेदान्त विद्या, नाना यंत्र-मंत्र, घोड़ा, भय, नृत्य, खजाना, मनोहर आकृति, वायव्य दिशा का अधिपति, मुख्य द्वार (बड़े नगरों का प्रवेश द्वार) इन सबका कारक बुध ग्रह है।

टिप्पणी : उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त काव्यकौशल, रसिकता, ज्योतिष, तीर्थयात्रा, सुरुचिपूर्ण वेष, नाभि, आन्ध्र देश की भाषा का

ज्ञान, पक्षियों की भाषा, आदि का भी कारक वुध है। ऐसा मन्तव्य श्री जीवनाथ, वैद्यनाथ तथा श्री कालिदास का है।

गुरू ग्रह का कारकत्व

सन्तानसौख्यं वचने पटुत्वं
शरीरपुष्टिर्द्रविणं तनूजः।
ज्ञानं मतिस्तंत्रविचारभूप-
विनोदवेदार्थविदोऽङ्गवीर्य्यम् ॥४९॥
तुरंगसौख्यं स्वगुरुः स्वकर्म्म
सिंहासनं गोरथवृद्धविप्राः।
चामीकराभूषणसत्त्वमेदो-
मीमांसतीर्थानि यशः सुरेज्यात् ॥५०॥

सन्तान सुख, भाषण की पटुता, शरीर की पुष्टि, धन, पुत्र, ज्ञान, बुद्धि, सिद्धान्त, शास्त्रों का अध्ययन, राजसी भोग-विलास, वेदार्थ का ज्ञान, शरीर का बल, घोड़ों का सुख, अपना गुरू, अपना कर्म, सिंहासन, गाय या बैल, रथ, बूढ़ा, ब्राह्मण, सोने के गहने, सतोगुण, चर्बी, शास्त्र-मीमांसा, तीर्थ स्थान, यश, इनका कारक गुरू ग्रह है।

टिप्पणी : तर्क, ज्योतिष, पेट की बीमारियां, गोमेधकर्त्ता, बड़ा भाई, तपस्या, राजमान, शिवोपासना, वात व कफ आदि का भी कारक गुरू ही है।

शुक्र का कारकत्व :

व्यापारसौख्यमहिलाभरणानि काम-
देवांगनारतिबलानि विनोदविद्याम्।
प्राह्लादवाहनयशोऽश्वशुभेभभारी-
सौन्दर्य्यकाव्यरचनाः परिचिन्तयेद्भात् ॥५१॥

व्यापार सुख, स्त्री, आभूषण, काम शक्ति, सुन्दर नितम्बिनी स्त्रियों का भोग, बल, क्रीड़ा-विलासादि, यान, कीर्ति, घोड़ा, सुन्दर हाथी, स्त्री का सौन्दर्य, काव्य रचना आदि का विचार शुक्र ग्रह से किया जाना चाहिए।

टिप्पणी—शुक्र के कारकत्व के विषय में अनेक आचार्यों ने अपने विचार विस्तारपूर्वक प्रकट किए हैं। उपर्युक्त परिगणित विषयों के अतिरिक्त **मंत्रेश्वर** के मतानुसार—'सम्पत्ति, खजाना, पत्नी-सुख, शयनागार, श्रीमन्तता, मंत्रित्व, तथा विवाह का भी कारक शुक्र ही है।

बृहत्पाराशरी में बताया गया है कि—गरुड़ विद्या, राजा का वशीकरण, इन्द्रजाल, अणिमादि सिद्धियां, संगीत, नृत्य, वाद्य, कुसुम कोमलता का भी कारक शुक्र है।

भुवनदीपक में तो शुक्र सभी प्राणियों व फसलों का अधिपति माना गया है।

उत्तर कालामृत के उल्लेखानुसार—उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त मध्यावस्था, वैश्यवर्ण, जलस्थान, विचित्र काव्य, जलचर, आंख, सत्यभाषण, जलक्रीड़ा, नाटकादि प्रयोग, सफेद वस्त्रों से प्रेम, कोषाधिकार, काले बाल, गुप्तांग, मूत्र, नागलोक में भ्रमण तथा रहस्य भी शुक्र के अधीन हैं।

शनि का कारकत्व :

आयुर्विपत्तिपरवञ्चन शक्तिमोह-
वातव्यथानिधनकारणजीवनानि।
मालिन्यवस्त्रभयसीसकदुर्मतित्व-
शूद्रा लुलायविषयौ भृतकोऽर्कसूनोः ॥५२॥

आयु, विपत्ति, ठगने का कौशल, बेहोशी, वात रोग, मृत्यु का कारण, जीविका, गन्दे वस्त्र, भय, सीसा, दुष्ट बुद्धि, शूद्रवर्ण, भैंसा, देश जनपदादि तथा दास का कारक शनि ग्रह है।

टिप्पणी—जीवनाथ के अनुसार—लोभ, मोह, का भी कारक शनि है।

मंत्रेश्वर के मतानुसार—जातिभ्रष्टता, रोग, गरीबी, अपवाद, नीचजनों का आश्रय, लोहा, कृषि के साधन तथा कारागृह दण्ड भी शनि से ही विचारणीय हैं।

कल्याण वर्मा ने कहा है कि—जस्ता, सीसा, लोहा, कुधान्य तथा सन्यास भी परिगणनीय हैं।

भुवनदीपक के अनुसार—कांगनी, कोदों, उड़द, तिल, नमक तथा सभी काली वस्तुएं शनि के कारकत्व के अन्तर्गत हैं। विशेष रूप से मारक योग, मारक दशा तथा मारकेश ग्रह के निर्णय के समय शनि का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

राहु का कारकत्व :

म्लेच्छादिनीचाश्रयचामरान्त्यजा-
शौचास्थिगुल्मानृतपापयोषितः।
द्यूतस्त्वधोदृक् चतुरन्तवाहनं
पितामहो वातकफव्यथाऽहितः ॥५३॥

नीचम्लेच्छादि का आश्रय, चंवर, चाण्डाल, अपवित्रता, हड्डी, गुल्म रोग, झूठ बोलना, क्रूर स्त्री, जुआ, नीची दृष्टि, चतुरंगिणी (पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार तथा रथी) सेना, दादा, तथा वातकफ की पीड़ा का कारक राहु है।

केतु का कारकत्व :

सुरापगामज्जनकुक्षिनेत्र-
पीडाभिषक्कुक्कुटसारमेयाः।
ज्वरक्षयार्त्तो जनको जनन्या
वैराग्यवातौ जडता पताकात् ॥५४॥

गंगास्नान, नेत्र-कुक्षि की पीड़ा, वैद्य, मुर्गा, कुत्ता, बुखार, टी. वी., नाना, वैराग्य, वायु, मूर्खता, शीत की अधिकता, का कारक केतु है।

टिप्पणी—बृहत्पाराशरी के मतानुसार घाव, रोग, त्वचा, शूल रोग तथा भूख का कारक केतु है।

उत्तरकालामृत के अनुसार पार्वती गणेशादि देवताओं का स्तवन, गिद्ध, ऐश्वर्य, मंत्रशास्त्र, पत्थर, ब्रह्मज्ञान, फोड़े फुन्सी आदि भी ग्राह्य हैं।

कारक से फल ज्ञान :

यः कारको जन्मनि वीर्य्यवान् गुणी
स वृद्धिकर्त्ता निजवस्तुनां मतः।
वीर्य्यैश्च षड्भिः परिवर्जितो यदि
सस्वीयवस्तुक्षयकारकस्तदा ।।५५।।

जन्म के समय जो कारक ग्रह बली तथा गुणी हो, अर्थात् स्वोच्चराशि, वर्गोत्तम नवांश, शुभग्रहों से युत व दृष्ट हो तो पूर्वोक्त सम्बन्धी पदार्थों की वृद्धि करता है। इसके विपरीत जो ग्रह स्थानादि बल से हीन होता है वह सम्बद्ध पदार्थों का क्षय कारक होता है।

टिप्पणी—जीवनाथ के अनुसार अपनी राशि, मित्र की राशि या उच्च में होने पर कारक ग्रह अपने पदार्थों का लाभ कराता है। हमारे विचार से ज्योतिष-शास्त्रोक्त स्थान, दिक्, काल, चेष्टा, नैसर्गिक तथा दृग्बल के साधन करने पर बली कारक ग्रह अपने बल के अनुपात से फल देगा।

भावादि के बलाबल के अनुपात से फलकथन :

भावो भावाधीश्वरः कारकश्च
ते संयुक्ताः शक्तिभिः स्युस्तदानीम्।
प्रोक्तं पूर्णं तत्फलं जातकज्ञै-
रर्द्धं द्वाभ्यां स्वल्पमेकेन वाच्यम् ।।५६।।

लग्नादि बारह भावों में भाव, भावेश तथा भावकारक में तीनों यदि पूर्ण बली हों तो पूरा फल कहना चाहिए। दो के बली होने पर आधा फल तथा किसी एक के ही बली होने से अल्प फल कहना चाहिए।

टिप्पणी—भाव प्रकाश में भी ऐसा ही कहा गया है—

भवन्ति भावभावेशकारकाः बलसंयुताः।
तदा पूर्णं फलं द्वाभ्यामेकेनाल्पं फलं वदेत् ।। इति

ग्रहों का परस्पर कारकत्व :

यावन्त आकाशचरास्त्रिकोणभ-
स्वभोच्चयाता यदि कण्टकाश्रिताः।

ते कारकाः स्युर्निखिलाः परस्परं
तेषां वियद्गः कथितो विशेषतः ।।५७।।

जितने ग्रह जन्म कुण्डली में मूलत्रिकोण, स्वराशि, स्वोच्च में स्थित होकर केन्द्र गत हों, वे परस्पर कारक होते हैं।

इनमें से भी जो दशमस्थान गत हो वह विशेष रूप से कारक होता है।

कलानिधौ कर्किविलग्नगे यथा
कालेज्यभास्वत्कुटिलाः स्वतुंगगाः ।
उदाहृताः कारकसञ्ज्ञिता मिथ-
स्ते काम्बरस्थः सकलोऽङ्गगस्य च ।।५८।।

उपर्युक्त नियम को समझने के लिए ग्रन्थकार उदाहरण देते हैं। यदि कर्क लग्न में चन्द्र, शनि, बृहस्पति, सूर्य, मंगल स्वोच्च में स्थित हों तो परस्पर कारक होंगे। चतुर्थ या दशम स्थानगत ग्रह लग्नगत के लिए कारक होगा। लग्न गत ग्रह को किसी का भी कारक नहीं समझना चाहिए। **बृहज्जातक** में भी यही उदाहरण दिया गया है।

कारक लक्षण :

हेतुर्निरुक्तः स्वगृहस्वमूल-
त्रिकोणतुंगोपगतो विहंगः ।
अन्योन्यमभ्रालयगः सुहृत्त-
द्गुणान्वितः सोऽपि च कारकाख्यः ।।५९।।

अपनी राशि, मूलत्रिकोण या स्वोच्च राशि में होना कारकत्व के प्रति कारण है। केवल केन्द्रस्थ होना ही कारकत्व के लिए पर्याप्त नहीं है। जो ग्रह दशम स्थान में स्वराशि, स्वमूलत्रिकोण या स्वोच्च में स्थित होता है, वह जिस ग्रह से दशम है, उसका यदि अधिमित्र (पंचधा मैत्री के अनुसार) हो तो उसका भी कारक होता है।

टिप्पणी—इस विषय में **वराहमिहिर** का भी यही विचार है। उन्होंने कहा है—

स्वत्रिकोणोच्चगो हेतुरन्योन्यं यदि कर्मगः।
सुहृत्तद्गुणसम्पन्नः कारकश्चापि स स्मृतः।। इति

मतान्तर से कारक लक्षण :

सम्बन्धतः कण्टककोणपालाः
परस्परं चेदितरैः प्रसक्ताः।
न स्युर्विशेषात्फलदायकास्ते
केन्द्रत्रिकोणाधिपती स्वयं तु ।।६०।।
चेद्दोषयुक्तावपि तौ भवेतां
सम्बन्धमात्राद्बलशालिनौ स्तः।
योगस्य तौ चेद्यदि कारकाख्यौ
पदांकपालौ क्रमतो वसेताम् ।।६१।।
तपःखयोर्वा विधिभावगौ ता-
वाज्ञाश्रितौ वैकनिकेतनस्थौ।
किं वैक एव स्वगृहे वसेच्चे-
त्स्तः कारकौ कीचककोणपाभ्याम् ।।६२।।
सञ्चितयेदेवमथात्मसम्भव-
भाग्येशमध्ये यदि येन केनचित्।
सहैव सम्बन्ध इहोर्जसंयुत-
केन्द्रस्य नेतुः स सुयोगकारकः ।।६३।।

प्रथम चतुर्थ, सप्तम तथा दशम स्थानों के अधिपति तथा पंचम व नवम के अधिपति आपस में यदि सम्बन्ध रखते हों (पूर्वोक्त क्षेत्र, दृष्टि, अधिष्ठितराशीशदृष्टि व युति सम्बन्ध) तथा दूसरे स्थानेशों (तीसरे, आठवें, छठे तथा ग्यारहवें स्थान के स्वामी) से सम्बन्ध न रखते हों तो विशेष योगकारक होते हैं।

यदि केन्द्राधिपति व त्रिकोणाधिपति का तृतीय षष्ठाष्टम एकादश के अधिपतियों से सम्बन्ध न हो तथा वे स्वयं यदि दोष युक्त भी हों तो बली होकर योगकारक बन जाते हैं। दोष से तात्पर्य है कि वे ग्रह स्वयं ही ३, ६, ८, ११ के अधिपति भी हों तो दोषयुक्त होते हैं।

नवमेश व दशमेश के सम्बन्ध से भी योगकारकत्व इस प्रकार होता है—

(क) नवमेश दशम में तथा दशमेश नवम में हो।

(ख) ये दोनों ग्रह नवें या दसवें स्थान में एकत्र हों।

(ग) ये दोनों कहीं भी एक स्थान में हों।

(घ) दोनों में से कोई एक भी स्वराशि में स्थित हो तो योग कारक होंगे।

नवमेश या पंचमेश दोनों में से किसी एक का भी बलवान् केन्द्रेश से सम्बन्ध हो तो अच्छा योगकारक ग्रह होता है।

टिप्पणी—उपर्युक्त सभी योगों का यथावत् उल्लेख पाराशरी में भी किया गया है। क्रमशः द्रष्टव्य हैं—

केन्द्रत्रिकोणपतयः सम्बन्धेन परस्परम्।
इतरैतरप्रसक्ताश्चेद् विशेषफलदायकाः ।।क।।

केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद् बलिनौ भवेतां योगकारकौ ।।ख।।

निवसेतां व्ययत्येन तावुभौ धर्मकर्मणोः।
एकत्रान्यतरो वापि वसेत् चेद्योगकारकौ ।।ग।।

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धो येन केनचित्।
केन्द्रनाथस्य बलिनो भवेद् यदि सुयोगकृत् ।।घ।।

केन्द्रत्रिकोणेश का विशेष योगकारकत्व :

एकत्वे नृजनुषि केन्द्रकोण राश्योः
पत्योश्चेत्कथयति योगकारितां वित्।
सम्बन्धोऽस्तु तदितरत्रिकोणपेन
किं श्रेष्ठं प्रभवति चेदतः परं हि ।।६४।।

मनुष्यों के जन्म समय जो ग्रह केन्द्र तथा त्रिकोण दोनों का अधिपति हो तो वह योगकारक होता है।

यदि उक्त ग्रह का दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध हो तो इससे बढ़कर भला क्या सुयोग हो सकता है?

राहु व केतु की योगकारक विशेषता :

केन्द्रेऽथवा कोणगृहे वसेतां
तमोग्रहावन्यतरेण चापि।
नाथेन सम्बन्धवशाद्भवेतां
तौ कारकावुक्तमिहेति विज्ञैः ॥६५॥

यदि राहु या केतु केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों तथा उनका दूसरे केन्द्रेश या त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो अथवा केन्द्र में होते हुए त्रिकोणेश से या त्रिकोण में रहते हुए केन्द्रेश से सम्बन्ध हो तो ये उत्तम योग कारक होते हैं।

मतान्तर से ग्रहों का नित्यकारकत्व :

श्यालानुजाम्बाभगिनीमुखाः कुजा-
द्विचारमर्हेन्न्तसितात्सुता गुरोः।
पितामहो भाच्छ्वशुरौ पतिः पिता
माताऽबला ज्ञाज्जननीसमास्तथा ॥६६॥

पत्नी का भाई, छोटा भाई, माता तथा बहन का कारक मंगल है। शनि पुत्रकारक, गुरू पितामह (दादा) कारक तथा सास, ससुर, पति, पिता, माता और स्त्री का कारक शुक्र है।

माता के समान पूज्य व वृद्ध स्त्रियों का कारक बुध है।

ग्रहों का चर कारकत्व :

आकाशगो यः सकलाभ्रचारिणां
मध्येऽधिकांशः स इहात्मकारकः।
तस्मात्खगो न्यूनलवः प्रकीर्त्यते-
ऽमात्यस्ततः सोदरकारकस्ततः ॥६७॥

मातुश्च तातस्य सुतस्य कारको
ज्ञात्याह्वयस्याथ कलत्रकारकः।
स्यात्कारकैक्यं तनयाम्बयोस्तनु-
र्यत्कारकांशे प्रथमस्य गोऽशभम् ॥६८॥

जन्म समय सूर्यादिग्रह स्पष्ट के आधार पर क्रमशः गतांश भेद से इस तरह कारक होते हैं—

सबसे अधिक गतांश वाला ग्रह 'आत्मकारक' उससे कम अंशवाला—अमात्य कारक, उससे न्यून—भ्रातृकारक, उससे न्यून—मातृकारक, उससे न्यून—पितृकारक, उससे न्यून—पुत्रकारक, उससे न्यून—जातिकारक तथा सबसे न्यून—स्त्रीकारक होता है।

टिप्पणी—आचार्यों ने मातृकारक व पुत्रकारक को एक ही माना है। अतः सात ही कारक गिने जाते हैं। मतान्तर से पितृकारक व पुत्रकारक की एकता होती है।

अंशों में समानता होने पर कलाओं तथा विकलाओं की क्रमशः न्यूनाधिकता का विचार करके निर्णय कर लेना चाहिए।

कारकांश कुण्डली के निर्माण के लिए आत्मकारक ग्रह जिस नवांश में हो उसे ही लग्न मानकर कुण्डली बना लेनी चाहिए। शेष ग्रह अपने-अपने नवांश में रहेंगे।

कारकेशों का फलोदयकाल :

भानोर्जातिमिता जिना गजयमा दन्ता नृपालाः क्रमा-
न्नाराचाश्विमिताः सपत्नदहना दोः सागरा वत्सराः।
शुद्धो दिक्षुगणेषु यो दिविचरः स्वोच्चोपगः स्वर्क्षगो
मर्त्यानामुदयो विधेर्भवति तत्खेटस्य वर्षे ध्रुवम् ॥६६॥

सूर्य के २२ वर्ष, चन्द्र के २४ वर्ष, मंगल के २८ वर्ष, बुध के ३२ वर्ष, गुरू के १६ वर्ष, शुक्र के २५ वर्ष, शनि के ३६ वर्ष, राहु के ४२ वर्ष भाग्योदय के वर्ष होते हैं।

कारक ग्रहों में से जो दशवर्ग शुद्धि से युक्त अर्थात् शुभवर्ग, स्वोच्च, अथवा स्वराशि में हों तो उस ग्रह के भाग्योदय वर्ष में निश्चित ही मनुष्य का भाग्योदय होता है।

यह 'प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में कारक प्रकरण समाप्त हुआ।

३ भावग्रह प्रकरण

भावों का बल :

भावादखेटाद् ग्रहयुक्तभावो
ज्यायान् सखेटादधिकग्रहाढ्यः ।
चरस्थिरद्वन्द्वगृहाः सवीर्याः
साम्ये खगैर्भावबलं किलेत्थम् ॥१॥

जिस स्थान में कोई ग्रह विद्यमान न हो उसकी अपेक्षा ग्रहयुक्त भाव (सामान्यतः) बली होता है।

इसी क्रम में ग्रह युक्त भाव की अपेक्षा अधिक ग्रहों वाला भाव बली होता है।

यदि विचारणीय भावों में ग्रहों की समानता हो तो चर राशि में स्थित ग्रह की अपेक्षा स्थिर राशिगत ग्रह तथा स्थिरगत की अपेक्षा द्विस्वभाव राशिगत ग्रह को बलवान् समझना चाहिए। इस प्रकार भावों का सामान्यतः बल जाना जाता है।

भाव स्पष्ट से ग्रह का फल :

प्राग्भावजफलं दद्यादारम्भसन्धितोऽल्पकः ।
विरामसन्धितः पुष्टः खगो गम्यगृहोद्भवम् ॥२॥

भाव स्पष्ट के अंश कलादि की आरम्भ सन्धि की अपेक्षा यदि स्पष्ट ग्रह कम अंशादि वाला हो तो पूर्वभाव में स्थित होने के समान फल देगा। इसी तरह भाव स्पष्ट की विराम सन्धि की अपेक्षा अधिक अंशादि वाला ग्रह अगले भाव के अनुसार फल देगा।

टिप्पणी—जन्म कुण्डली में विद्वान् ज्योतिषी चलित चक्र का निर्माण किया करते हैं। प्रत्येक भाव के अंश कलादि स्पष्ट के अतिरिक्त प्रत्येक दो भावों के मध्य में कुछ अंशादिमान के तुल्य सन्धि मानी है। यह सन्धि प्रत्येक आगामी भाव की अपेक्षा आरम्भ सन्धि तथा पिछले भाव की अपेक्षा विराम सन्धि मानी जाती है।

सन्धिगत ग्रह प्राय: निर्बल माना जाता है। सन्धि मान से अधिक मान वाला ग्रह आगामी भावानुसार तथा पिछली सन्धि के मान से कम मान वाला ग्रह पिछले भावानुसार फल दिया करता है।

गणित क्रिया से भाव-सन्धिगत ग्रह का फलानुपात :

भावस्फुटप्रमलवो यदि भावयात-
स्तद् भावजन्यमखिलं फलमत्र कुर्य्यात् ।
सन्धिस्थितो दिविचरः स्वफलं न कुर्या-
न्मध्येऽनुपातवशतः फलमूहनीयम् ॥३॥

भाव में विद्यमान ग्रह के अंशादि यदि भाव स्पष्ट के अंशादि के बराबर हों तो ग्रह उस भाव का पूरा फल देता है। यदि आरम्भ या विराम सन्धि में स्थित ग्रह का स्पष्ट अंशादि मान भाव सन्धि के स्पष्ट मान के तुल्य हो तो ग्रह का फल 'शून्य' होता है।

यदि ग्रह का मान भाव के मान से अधिक या कम हो तो त्रैराशिक विधि से उसके स्पष्ट भाव फल का ज्ञान कर लेना चाहिए।

टिप्पणी—त्रैराशिक विधि की जानकारी देते हुए **भास्कराचार्य** ने बताया है—

प्रमाण और **इच्छा** ये दोनों समान जाति हैं तथा **फल** की **अन्य** जाति होती है।

प्रमाण : अन्य : : इच्छा : इष्टमान—इस क्रम से स्थापना करनी चाहिए।

अन्यफल और इच्छा को परस्पर गुणा कर प्रमाण से भाग देने पर लब्धि 'इष्टमान' अर्थात् 'फल' होता है।

उदाहरण से इसे स्पष्ट करते हैं—

8 पल का फल 60 कला हो तो 5 पल का फल कितना होगा? यहां पर पूर्वोक्त प्रकार से स्थापना करने पर स्थिति यह हुई—

प्रमाण : अन्य फल : : इच्छा : इष्टमान
८ : ६० : : ५ : ''

अन्य फल × इच्छा (६० × ५) = ३०० ÷ प्रमाण (८)

३०० ÷ ८ = ३७ कला

शेष '४' को ६० से गुणा कर पुनः 'प्रमाण' का भाग दिया तो विकलात्मक फल प्राप्त हो गया—

४×६०=२४०÷८=३० विकला

कुल इष्ट फल ३७ कला ३० विकला हुआ।

इसी त्रैराशिक पद्धति से भावसन्धि में विद्यमान ग्रह का फल प्रतिशतता के अनुसार निकाल लेना चाहिए।

सन्धिगत ग्रह की निर्बलता :

ग्रहः स्वतुंगस्वसुहृद्भयातः
प्रधानवीर्य्यैः सहितोऽपि षड्भिः।
सन्धि गतः सन् फलदो नहीति
सञ्चिन्त्य सूरिः प्रवदेद्दशायाम् ।।४।।

ग्रह यदि अपनी उच्चराशि में स्थित हो या मित्र की राशि में स्थित हो तथा षड्बल से युक्त हो; लेकिन सन्धि में विद्यमान होने पर भावजनित फल देने में नितान्त अशक्त होता है।

ग्रह की इस चलित स्थिति के अनुसार ही विद्वान् ज्योतिषी ग्रह की दशा में उसके फलाफल की स्थिति कहे।

ग्रहस्थितिवश भाव का परिपोष :

यद्भे सन्तस्तस्य पुष्टिं विदध्युः
पापा हानिं वैपरीतं त्रिकेषु।
रोगेऽरिघ्नाः शोभना रिःफमृत्योः
सर्वे नेष्टा एवमन्ये वदन्ति ।।५।।

जिस स्थान में शुभ ग्रह विद्यमान हों सामान्यतः उस भाव की वृद्धि करते हैं तथा पाप ग्रह भाव की हानि करते हैं।

इसके अपवाद स्वरूप षष्ठ अष्टम व द्वादश भाव में शुभग्रह हानिकारक तथा क्रूर ग्रह शुभफलदायक होते हैं।

मतान्तर से षष्ठ स्थान में शुभग्रह शत्रु नाशक होते हैं तथा अष्टम व द्वादश स्थान में सभी ग्रह अशुभ होते हैं।

भावानुसार विशेषग्रहों से फलयोग :

स्युः सौख्यदा ज्ञगुरुभाः क्रमशोऽष्टरोगा-
न्त्यस्थाः शुभास्त्रिकगताः स्वहितोच्चभस्थाः ।
सद्वीक्षिताः किमथ तद्गृहगास्तदीशा
मूढारिनीचविजिता यदि शोभनाः स्युः ॥६॥

अष्टम स्थान में बुध, षष्ठ में गुरू और द्वादश में शुक्र हो तो शुभ फलदायक होते हैं।

षष्ठाष्टमद्वादश गत ग्रह यदि स्वराशि, मित्रराशि या उच्चराशि में स्थित हों या शुभग्रहों की उन पर दृष्टि हो तो वे शुभ होते हैं।

इसी प्रकार षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भावों के अधिपति यदि अस्तंगत, नीचस्थ, शत्रुराशिगत निर्बल होते हैं अथवा शत्रुग्रहों से आक्रान्त होते हैं तथा इन्हीं स्थानों में स्थित हों तो शुभ फल देने वाले होते हैं।

षष्ठ अष्टम व द्वादश भाव का विशेष विचार :

ईम्मर्य्योरिवाऽरिभेरन्ध्र मृत्वो
रन्ध्रे चिन्त्यं व्यस्तमन्त्ये व्ययस्य ।
स्युर्योगा येऽशोभना जन्मकाले
पुंसां याप्यास्ते शुभावेक्षिताश्चेत् ॥७॥

षष्ठ स्थान से घाव व शत्रु का, अष्टम से दोष व मृत्यु का तथा व्यय से खर्च का ज्ञान करना चाहिए।

जन्म समय में जो योग अशुभ बताए जा चुके हैं या आगे बताए जाएंगे उन सब योगों के योग कारक ग्रह यदि शुभ ग्रहों से दृष्ट हों तो वे 'योगयाप्य' संज्ञा वाले होते हैं। आशय यह है कि वे जितना अधिक शुभदृष्ट होंगे, उतनी ही कमी उनके अशुभ फल में होती चली जाएगी। वे ग्रह कुछ कम मात्रा में अशुभ फल देंगे।

सपत्ननाथः परिपन्थिरोगा-
न्भ्रंशं च दारिद्रयमुखं व्ययेशः ।
भीतिं मृतिर्मृत्युपतिर्विदध्या-
द्विशेषतोऽसन्युतिवीक्षणाद्यैः ॥८॥

शत्रु स्थान के स्वामी से शत्रुओं व रोगों का विचार होता है। द्वादशेश से मनुष्य की अवनति तथा दरिद्रता एवं अष्टमेश से मृत्यु व मृत्यु के भय का विचार करना चाहिए।

(षष्ठ, अष्टम व द्वादश भावों को दुष्ट भाव कहा जाता है। इनके स्वामियों के परस्पर दृष्टि आदि सम्बन्धों का विचार करके शुभाशुभ फल का ज्ञान करना चाहिए। परस्पर सम्वन्ध होने से ये ग्रह विशेष अशुभ फलदायक हो जाते हैं।

व्ययेश व अष्टमेश का विशेष प्रभाव :

यन्निकेतनपतिर्व्ययोपगो
यन्निकेतनगतो व्ययाधिपः।
नाशनं तदनुरूपवस्तुनो
यद्गृहे विबलमृत्युपस्तथा ।।९।।

जिस स्थान का स्वामी व्यय भाव में जाकर स्थित हो तो उस भाव का प्रायः नाश करता है। इसी तरह व्ययेश जिस स्थान में जाकर स्थित हो तो भी उस भाव से सम्बन्धित वस्तु का नाश होता है।

अष्टमेश बलहीन होकर जिस स्थान में स्थित होगा, उस भाव की हानि ही करेगा।

टिप्पणी—बारहवें भाव का नाम व्यय या हानि भी है। यही कारण है कि हानिभाव का अधिपति जहां होगा, अपने स्वभावानुसार उस भाव के शुभ या अशुभ फल का नाश करेगा।

इसी तरह अष्टमेश भी हानिकारक होता है। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि व्ययेश यदि अशुभ भावों में होगा यथा (षष्ठ-अष्टम या व्यय) तो वह क्रमशः रोग-शत्रु-मृत्यु तथा हानि की ही हानि करके शुभ फल दायक ही माना जाएगा।

अष्टमस्थ शनि व सप्तमस्थ शुक्र का विशेष फल :

इष्टप्रदो मन्दगतिर्मृतिस्थो-
ऽरिष्टप्रदा मन्मथगो मघाभूः।
प्रबन्धयातः पुरुहूतपूज्यः
पातालगः पर्वरिदेहजातः ।।१०।।

अष्टम स्थान में स्थित शनि शुभ फल देने वाला होता है। सप्तम स्थान में स्थित शुक्र तथा पंचम में गुरू एवं चतुर्थ में बुध प्रायः अशुभ फलदायक होता है।

टिप्पणी—शनि आठवें स्थान का नित्य कारक है तथा यह आयु का स्थान है, अतः सामान्यतः शनि को आयुष्यकारक कहा जाता है। शनि स्वभावतः क्रूर ग्रह है तथा अष्टम (दुष्टभाव) में क्रूर ग्रह की स्थति सामान्यता शुभ है। शनि की स्थिति आयुष्यकारक होने के कारण विशेषतया इष्ट फल दायिनी होती है।

इसी प्रकार पंचमस्थ गुरू अशुभ फलदायक होता है। कारण यह है कि गुरू स्वभावतः जहां स्थित होता है उस भाव की हानि ही करता है। इसके विपरीत शनि स्वभावतः स्थान वृद्धिकारक है। यहां यह स्थिति विशेषतया ध्यातव्य है कि गुरू केन्द्र से बाहर स्थित हो तभी हानिकारक है तथा शनि केन्द्र में स्थित हो तभी लाभकारक होगा। विपरीत स्थिति में दोनों विपरीत फल ही देंगे। यही कारण है कि त्रिकोणगत (पंचमस्थ) गुरू हानिकारक होगा। इसी सिद्धान्त से शनि भी केन्द्र के बाहर अष्टमस्थ होकर मृत्यु की हानि करेगा। **वैद्यनाथ** ने यही कहा है—

'कामावनिनन्दनराशियाताः सितेन्दु पुत्रामर वन्द्यमानाः।
अरिष्टदास्तेऽखिलजातकेषु सदाष्टमस्थः शनिरिष्टदः स्यात् ॥' इति

अन्य अरिष्ट योग :

पुण्ये पपीः पाथसि पक्षजन्मा
भुजे कुजः सन्ततिभे सुरेज्यः।
कामे भ आर्किनिधने च तस्या
श्रवं विदध्याज्जगुरेवमन्ये ॥११॥

जन्म के समय नवम (पुण्यस्थान) में स्थित सूर्य, चतुर्थ में चन्द्रमा, तृतीय (भुज) स्थान में मंगल, पंचम स्थान में गुरू, सप्तम में शुक्र और अष्टम में शनि क्लेशकारक होते हैं। ऐसा अन्य आचार्यों का मत है।

टिप्पणी—शनि की पूर्वोक्त अष्टम स्थिति को छोड़कर, **वैद्यनाथ** का मतसंवाद यहां स्पष्ट है। **मंत्रेश्वर** ने भी इस स्थिति को

दूसरों के नाम से ही उद्धृत किया है। अष्टमस्थ शनि यदि बलवान है तथा पापग्रहों से आक्रान्त नहीं है तो प्रायशः दीर्घायुकारक ही होता है, इस विषय में प्रायः आचार्यों का बहुमत है। हम भी इसे ठीक ही समझते हैं। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो शनि ग्रहमण्डल में सूर्य से बहुत अधिक दूरी पर स्थित है। अतः अल्पप्रकाश वाला कृष्ण वर्ण माना गया है तथा स्वभावतः धीरे-धीरे चलता है, अतः **'शनैश्चर'** या **'मन्द'** नाम सार्थक है। इसलिए यह जिस स्थान में स्थित होगा उस स्थान में स्थिरता पैदा करता है। आयुस्थान में मृत्यु की मन्दता (देर से आना) आयु की स्थिरता को करता है। यह बात पंचमस्थ शनि पर भी लागू होती है। **जातकालंकार** के अनुसार पंचमस्थ शनि कई पुत्रों को प्रदान करता है, लेकिन थोड़ा विलम्ब से। सन्तति प्राप्ति वहां स्वतःसिद्ध है।

यहां नवम में सूर्य को क्लेशकारक बताया है जबकि **उत्तरकालामृत** के अनुसार यहां पर सूर्य (यदि बलवान हो) निश्चित ही शुभकारक होता है।...**'रविशनी धर्मस्थितौ ज्ञेऽष्टमे।'**

चतुर्थस्थ चन्द्रमा की अशुभता का कारण यह हो सकता है कि चन्द्र जिस स्थान में स्थित हो उससे अष्टम स्थान की हानि करता है। चतुर्थस्थ होने पर अष्टम स्थान आयस्थान होता है। अतः निश्चित ही धनागम में बाधा पहुंचाएगा।

भावों के बाधक ग्रह :

चरस्थिरद्वन्द्वभतः क्रमेणा-
याङ्कास्तगा वाथ तदीश्वरा ये।
जातित्रिभागाधिपमान्दिभेशा
बाधाकरास्ते विहगा अतीव ॥१२॥

जन्म समय में चर राशि से ग्यारहवां भाव, स्थिर राशि से नवां भाव तथा द्विस्वभावराशि से सातवां भाव जिन ग्रहों से युक्त हों वे ग्रह, यदि वहां ग्रह न हो तो क्रमशः आयेश, भाग्येश तथा जायेश, यदि बाइसवें द्रेष्काण के स्वामी हों, अथवा मान्दि की राशि के स्वामी हों तो उन भावों के लिए विशेषतः बाधक होते हैं।

भावस्थ ग्रहों के कुछ अन्य योग :

रोगेभगोऽखिलविधुर्वनगस्त्रिकोणे
गौरोऽसितः सहजगः सित उद्गमस्थः ।
लाभेऽखिलाः शुभकरा अनृजुद्युकृद्गाः
स्वोच्चाश्रिता ददन्ति मिश्रफलं कुजाद्याः ।।१३।।

छठे स्थान में सूर्य, चतुर्थ स्थान में पूर्ण चन्द्रमा, त्रिकोण स्थानों में बृहस्पति, तृतीय स्थान में शनि, लग्न में शुक्र तथा एकादश में सभी ग्रह शुभ फलदायक होते हैं। मंगल आदि पंचतारा ग्रह, अपनी राशि या अपने उच्च में स्थित होकर वक्री हों तो मिश्रित फल देते हैं। अस्त होने पर भी मिश्रित फल ही समझना चाहिए।

तृतीयषष्ठैकादशस्थ ग्रहों का अवस्था भेद में फल :

शोभनाः सहजशत्रुभवस्थाः
शैशवे मनुभवाः सुखिनः स्युः ।
गर्हिता गगनगा यदि तत्र
प्राणिनां सुखकरा वयसोऽन्त्ये ।।१४।।

तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें स्थानों में यदि शुभग्रह स्थित हों तो मनुष्य को बचपन में सुख प्राप्त होता है।

इन स्थानों में पापग्रह स्थित हों तो मनुष्य बुढ़ापे में सुखी होता है।

मतान्तर से फल :

बाल्ये सत्फलदाः शुभास्त्रिभवषट्संस्थाः खलास्तत्र चेद्
वार्द्धक्येऽथखला मदार्थमतिगाः सौख्यप्रदाः शैशवे।
सौम्यास्तत्र तदान्तिमेऽथमरणाभ्रान्त्यांगभाग्याम्बुगाः
सत्क्रूराः क्रमशः शुभाशुभफलं दद्युर्वयस्सु त्रिषु ।।१५।।

तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें स्थानों में यदि शुभ ग्रह हों तो बाल्यावस्था में सुखी, पापग्रह हों तो वृद्धावस्था में सुखी होता है।

यदि दुष्ट ग्रह दूसरे, पांचवें व सातवें स्थान में हों तो बाल्यकाल

में सुखदायक होते हैं। यदि इन स्थानों में सौम्य ग्रह हों तो वृद्धावस्था में सुख देते हैं।

अन्य स्थानों में (लग्न, चतुर्थ, अष्टम, नवम, दशम तथा द्वादश) यदि शुभ ग्रह होंगे तो सदा तीनों अवस्थाओं में सुखकारी होंगे तथा क्रूर ग्रह होंगे तो सदा कष्टकारी होंगे।

भावेशभेद से फल भेद :

स्वान्त्येशौ फलदायकौ प्रभवतोऽन्येषामनन्तौकसां
सम्बन्धेन ततो मृतित्र्यरिभवाधीशा अशस्ताः समे।
खेटाः कण्टकवेश्मनां परिवृढाः सौम्या न शस्ताः खलाः
शस्ताः सत्फलदा भवन्ति निखिलाः खेटास्त्रिकोणाधिपाः ॥१६॥

द्वितीयेश व द्वादशेश अन्य ग्रहों की संगति के अनुसार शुभाशुभ फल देते हैं।

तृतीयेश, षष्ठेश, अष्टमेश व एकादशेश सदा पापफल देने वाले होते हैं।

केन्द्र स्थानों के स्वामी यदि शुभग्रह हों तो भी शुभ फल नहीं देंगे। इन स्थानों के स्वामी यदि पाप ग्रह होंगे तो शुभ फल देने वाले होंगे। पांचवें व नवें स्थानाधिपति तो चाहे शुभ हों या क्रूर तथापि शुभ फल ही प्रदान करेंगे।

टिप्पणी—ठीक यही बात महर्षि पराशर ने भी कही है। द्वितीयेश व व्ययेश के विषय में यह ध्यान देने योग्य बात है कि वे स्वभावानुसार फल न देकर, जिन ग्रहों के साथ स्थित होंगे तदनुसार ही फल देंगे। यदि पापसंग हैं तो पाप फल तथा शुभसंग हैं तो शुभ फलप्रद होंगे—

लग्नाद् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ ॥ पराशर

अष्टमेश की विशेष स्थिति :

मृतीशश्चेत्स्वयं लग्नेट् स एव शुभकृद्भवेत्।
निमीलनेशतादोषः स्यान्नाहिमहिमोरुयोः ॥१७॥

न मारकेशत्वदोषः स्यात्तयोराह पराशरः।
स्थितेरपेक्षया दृष्टिर्विहंगानां बलीयसी ॥१८॥

यदि अष्टमेश स्वयं लग्नेश भी हो तो उसका अष्टमेशत्व के कारण अशुभत्व नहीं रहता। अर्थात् वह शुभ फल देने वाला होता है।

सूर्य व चन्द्रमा एक-एक राशि के स्वामी हैं, अतः इनके सम्बन्ध में यह स्थिति सम्भव नहीं है। अतः आचार्यों ने इन्हें अष्टमेश होने पर भी 'पापदोष' से मुक्त रखा है। अर्थात् ये शुभ ही होते हैं।

ये सूर्य व चन्द्र दोनों ग्रह मारकेशत्व के प्रभाव से भी मुक्त होते हैं। यदि ये द्वितीयेश या सप्तमेश भी हों तो भी मारकेश नहीं होते हैं, ऐसा महर्षि पराशर का मत है।

सामान्यतः जहां पर ग्रह स्थित है, उस स्थान की अपेक्षा जिस स्थान पर उसकी दृष्टि है वहां वह अपना विशेष शुभाशुभ फल यथावसर देता है। आशय यह है कि स्थिति की अपेक्षा दृष्टि अधिक बलवती होती है।

टिप्पणी—ये सभी सिद्धान्त महर्षि पराशर द्वारा समर्थित हैं—उन्होंने कहा है—"**न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्।**"

लग्नेश व अष्टमेश की एकता के विषय में वे कहते हैं—

"**स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपिचेत्स्वयम्।**" इति

केन्द्राधिपत्य व मारकेशत्व की उत्तरोत्तर बलवत्ता :

बली क्रमात्कण्टकपत्वदोषो
ग्लौसौम्यशुक्रेन्द्रपुरोहितानाम्।
काव्येज्ययोः स्वास्तपतित्वदोषो
बलो तयोर्मारकभस्थितिश्च ॥१९॥

शुभग्रह यदि केन्द्र स्थानों के अधिपति हों तो प्रायः शुभ फलदायक नहीं होते, लेकिन इनमें भी चन्द्र, बुध, शुक्र व गुरु का उत्तरोत्तर केन्द्राधिपत्य अधिक अशुभ हो जाता है।

इसी तरह शुक्र व गुरु का मारकेशत्व दोष भी उत्तरोत्तर बलवान हो जाता है। यदि ये मारक स्थान में स्थित हों तो विशेष बली हो जाते हैं।

टिप्पणी—आशय यह है कि केन्द्राधिप चन्द्र से केन्द्राधिप बुध अधिक अशुभ फलदायक है। इसी क्रम से शुक्र व गुरु यदि केन्द्राधिप हैं तो अधिक दुष्ट होते जाते हैं।

मारक स्थान अर्थात् दूसरे व सातवें स्थान में शुक्र व गुरु शुभ फलदायक नहीं होते, क्रमशः अधिक बली मारक हो जाते हैं। महर्षि पराशर ने भी ऐसा ही कहा है।

भाव-ग्रह-युति की विफलता :

यदि हरिः सहरिर्गिरि गोभवो
वनगृहे विबुधो भृगुजो भये।
मनसिजे मृदुगो धिषणाभिधो
धियि भवन्ति तनोर्विफला अमी ॥२०॥

सूर्य व चन्द्रमा यदि साथ-साथ हों तो फलदायक नहीं होते हैं। इसी तरह दूसरे स्थान में मंगल, चौथे स्थान में बुध, छठे स्थान में शुक्र, सातवें में शनि और पांचवें स्थान में गुरु निष्फल होते हैं। अर्थात् सत्फल देने की शक्ति से रहित होते हैं।

टिप्पणी—**वैद्यनाथ** ने भी ऐसा ही कहा है। इसके पीछे सम्भवतः यह रहस्य है कि जो ग्रह जिस भाव का कारक हो, उससे व्ययस्थान (बारहवें स्थान) में यदि स्थित होगा तो निश्चय ही उस स्थान की हानि करेगा। शनि आयुस्थान का कारक है। अतः उससे बारहवें स्थान अर्थात् सातवें में स्थित होने पर आयु की हानि करने के कारण विफल होगा।

इसी प्रकार स्त्रीकारक शुक्र स्त्री भाव से द्वादश अर्थात् षष्ठ स्थान में स्थित होने पर वृथा है। तृतीय का कारक मंगल दूसरे स्थान में अशुभ है।

उच्च नीच ग्रहों की सम्बन्ध भेद से निष्फलता :

सत्फलोऽपि खग उग्रवीक्षितो-
ऽसत्फलोऽपि सुकृतेक्षितः किमु।
सुस्थलस्थितखगः खलेक्षितो-
ऽसुस्थलस्थखचरः शुभेक्षितः ॥२१॥

निष्फलौ रिपुभगोऽरिवीक्षितो-
ऽस्तंगतोऽधरभगोऽफलस्ततः
चेन्नभोग इतरत्र संस्थितो
मध्यमः फल उदीरितस्तदा ।।२२।।

अपनी उच्च राशि में स्थित ग्रह यदि पाप ग्रहों से दृष्ट होगा तो अशुभ फलदायक होगा।

यदि नीचस्थ अथवा दुष्ट भावस्थ ग्रह शुभ ग्रहों से दृष्ट होगा तो निष्फल अर्थात् शुभाशुभ दोषरहित हो जाएगा।

इसी तरह शुभ भावों (तृतीय, षष्ठ, अष्टम, द्वादश को छोड़कर) में गया हुआ ग्रह यदि पाप ग्रहों से देखा जाता हो तथा अशुभ भावों में स्थित ग्रह शुभ ग्रह से देखा जाता हो तो निष्फल होगा।

निसर्ग शत्रु की राशि में स्थित, निसर्ग शत्रु से दृष्ट, अस्तंगत या नीच राशिस्थ ग्रह निष्फल होता है।

यदि उपर्युक्त परिस्थितियों के विपरीत स्थिति हो तो ग्रह का फल आचार्यों ने मध्यम बताया है।

स्वीयतुंगसखिसद्मसंस्थितः
पामरोऽपि यदि सत्फलं व्रजेत्।
क्रूरतां व्रजतु शोभनोऽप्यरि-
मूढनीचनिलयस्थितो यदि ।।२३।।

यदि पापी ग्रह अपनी राशि, अपने उच्च या मित्र की राशि में स्थित हों तो वे भी शुभ फलदायक हो जाते हैं।

इसी प्रकार सौम्य ग्रह यदि शत्रु स्थान, नीच स्थानगत या शत्रु दृष्ट होंगे तो अशुभ फल देंगे। आशय यह है कि उपर्युक्त स्थिति में वे अपने स्वभाव के विपरीत फल प्रदान करेंगे।

पूर्वोक्त नियमों का प्रयोग स्थान :

फलं सुहृत्समारातिस्वोच्चस्वर्क्षादिगामिनाम्।
खगानां लग्नदेहादिभावैश्चिन्त्यं न पर्वरैः ।।२४।।

मित्रराशि, स्वराशि, समराशि, शत्रुराशि, उच्चनीचादिगत ग्रहों के फलाफल के सम्बन्ध में जो कहा गया है वह लग्न कुण्डली में

विचारित होना चाहिए। एतदनुसार चन्द्र कुण्डली में ग्रहस्थिति का विचार नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी—आशय यह है कि पहले ग्रह तथा भाव के सम्बन्ध से फलादेश के जो नियम बताए गए हैं, वे केवल लग्न कुण्डली पर ही लागू होते हैं, जैसा कि श्री वराह ने कहा है—

"सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुंगस्थितानां
फलमनुपरिचिन्त्यं लग्नदेहादिभावैः ॥" इति

दो स्थानों के अधिपति का प्रधान-गौण स्थान :

द्विस्थानेशत्वमस्ति त्रिकोणजं प्रमुखं स्वभे।
दलं यत्पूर्वमुभयोस्तद्दशादावनेहसि ॥२५॥
परार्द्धे प्रवदेत्पश्चाद्भावं युग्मगृहे सति।
युग्मजं फलमोजोत्थमोजभस्थे परे जगु ॥२६॥

जो ग्रह दो स्थानों का अधिपति हो तो जहां उसकी मूलत्रिकोण-राशि हो, उस भाव का वह मुख्यतः फलकारक होता है। जहां उसकी स्वराशि (दूसरी) हो, वहां उसका आधा फल समझना चाहिए।

मूल त्रिकोण राशि का फल दशा के शुरू में तथा स्वराशिजनित फल दशा के उत्तरार्द्ध में मिलेगा।

यदि ग्रह समराशि में स्थित हो तो अपनी समराशि का फल अपनी दशा के पूर्वार्द्ध में तथा विषम राशि में होने पर विषमराशि-जनित फल दशा के उत्तरार्द्ध में फलित होता है। ऐसा अन्य आचार्यों का मत है।

त्रिक स्थानगत द्वितीय राशि की निष्फलता :

दुःस्थानेशश्चेत्तदन्यस्वभस्थः
स्वक्षेत्रोत्थं यत्फलं तद्विधत्ते
नान्यद् धीस्थे सैणकोणे तनूज-
सिद्धिः षष्ठेशत्वदोषो न तस्य ॥२७॥

जो ग्रह दो राशियों का आधिपत्य रखते हैं यदि वे पांचवें, ग्यारहवें व सातवें भावों में अपनी ही राशि में स्थित हों तो जहां स्थित

हैं, उसी भाव का फल देंगे। आगामी दुष्ट भावों के आधिपत्य का दोष उन्हें नहीं लगेगा।

टिप्पणी—उदाहरण से विषय को स्पष्ट करते हैं—यदि पंचम स्थान में मकर राशि में शनि विद्यमान हो तो वह अपने अधिष्ठित भाव का पुत्रादि से सम्बन्धित फल ही प्रदान करेगा, छठे स्थान से सम्बन्धित फल वह नहीं देगा।

पार्श्ववर्ती भावों का मध्यवर्ती भाव पर प्रभाव :

पार्श्वद्वये यस्य गृहस्य शोभने
तत्सत्फलं सत्यशुभेऽशुभं फलम्।
नीचस्थयुक् तुंगगतोऽथनीचग-
स्तुंगस्थयुङ् मध्यफलं तयोर्भवेत्॥२८॥

जिस स्थान के अगले व पिछले भावों में शुभ ग्रह विद्यमान हों उस स्थान का फल शुभ होता है। यदि पार्श्ववर्ती इन भावों में अशुभ ग्रह हों तो उस स्थान से सम्बन्धित अशुभ फल होता है।

इसी तरह उच्चस्थ ग्रह की नीचस्थ ग्रह से अथवा नीचस्थ की उच्चस्थ से युति हो जाय तो उन दोनों ग्रहों का फल मध्यम हो जाता है।

पूर्ण फल देने वाले ग्रह की पहचान :

यो धीमता पूर्णदृशेक्षितोऽथवा
मूलत्रिकोणस्वभतुंगराशिगः।
नानिष्टदो यो विहगोंऽशषट्कगो
भान्वंशतः पूर्णफलं स यच्छति॥२९॥

जिस ग्रह पर बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि हो अथवा जो अपनी मूल-त्रिकोण राशि, अपनी राशि या अपने उच्च में हो वह कहीं भी स्थित होने पर सदा शुभफल ही देता है।

जो ग्रह राशि के १२ से १८ अंशों तक हो वह उस राशि का शुभाशुभ फल पूर्ण प्रदान करता है।

कुण्डली के पूर्वार्ध-परार्धगत ग्रहों का फल :

पूर्वार्द्धषट्कोपगताः पुरस्य
प्रत्यक्षमाकाशचरा दिशन्ति ।
स्वीयं फलं ते यदि ये विहंगाः
परार्द्धयाताः स्वफलं परोक्षम् ।।३०।।

लग्न के पूर्वार्ध में जो ग्रह स्थित हों वे अपना फल प्रत्यक्ष रूप से अर्थात् शीघ्र प्रदान करते हैं। इसके विपरीत लग्न के परार्ध में विद्यमान ग्रह अपना फल अप्रत्यक्ष रूप से प्रदान किया करते हैं।

टिप्पणी—दशम भाव के भोग्यांश से चतुर्थ भाव के भुक्तांश तक का भाग पूर्वार्ध कहलाता है तथा चतुर्थ के भोग्यांश से दशम के भुक्तांश तक का भाग परार्ध कहा जाता है।

वक्री ग्रह का फल कथन :

महाबली सत्खचरोऽनृजूच्चगो-
ऽत्युग्रोऽनृजुः क्रूरखगोऽथसद्ग्रहः ।
शीघ्रो बलिष्ठः खल ऊर्जवर्जितो
मिश्रं फलं यच्छति बोधनोऽनिशम् ।।३१।।

यदि सौम्य ग्रह उच्च राशि में स्थित होकर वक्रगति वाला हो तो अधिक सौम्य तथा महावली हो जाता है। इसके विपरीत क्रूर ग्रह यदि वक्री हो तो महाक्रूर हो जाता है।

सौम्य ग्रह यदि शीघ्र गति वाला हो तो महाबली तथा पापी ग्रह शीघ्रगामी होने पर निर्बल माना जाता है।

बुध ग्रह सभी स्थितियों में मिश्रित फल ही प्रदान करता है।

टिप्पणी—वक्री ग्रह प्रायः अपने स्वभावज फल से दूना फल, उच्चस्थ होने पर तिगुना तथा शीघ्र होने पर स्वाभाविक फल प्रदान करता है। नीचस्थ ग्रह आधा फल प्रदान करता है। ऐसा भी कहा गया है; लेकिन ये सिद्धान्त उत्तरकालामृत के अनुभवसिद्ध विपरीत राजयोग नियम के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

हमारा अनुभव भी है कि उच्चस्थ ग्रह सदा अच्छा फल ही नहीं देता है। यदि वह वक्री या पापी ग्रहों से घिरा होता है तो अवश्य ही उसका फल विपरीत हो जाता है। इसी तरह नीच ग्रह वक्री होने पर उच्च का सा फल देता है। कहा गया है—

···तुंगभे वक्री नीचबलः स्वनीचभवने वक्री बलं तुंगजम्···।

उत्तरकालामृत

असमर्थ ग्रह का लक्षण :

ये खेचरा निम्नगता विरूक्षाः
क्रूरैरुपेता अणवोऽस्तयाताः।
वीर्य्योज्झिता वैरिपराजिताः स्यु-
र्न ते समर्था निजकर्म्मकर्त्तुम् ॥३२॥

जो ग्रह अपनी नीच राशि में हों, रूक्षकान्ति, पाप ग्रहों से युक्त, कमजोर, अस्तंगत, षड्बल से रहित और शत्रु ग्रहों से पराजित हों वे कैसा भी शुभाशुभ फल देने में असमर्थ होते हैं।

विनष्ट ग्रह का लक्षण :

क्रूराक्रान्तो व्यंशुतां वा प्रपन्नः
सक्रूरो वा क्रूरदृष्टो विनष्टः।
यः खेटोऽसत्खौकसा जीयमानः
क्रूराक्रान्तो राहुपार्श्वे यथार्कः ॥३३॥

भास्वद्राशौ यः प्रविष्टः प्रविष्टु-
कामः किंवा व्यंशुकः सोऽप्रचारी।
तुल्ये भागे क्रूरयुक्तो नभोगो
यः क्रूरेणालोकितः पूर्णदृष्ट्या ॥३४॥

जो ग्रह क्रूर ग्रहों से आक्रान्त, राशि के ३०वें अंश में हो, क्रूर ग्रह से युक्त हो, क्रूर ग्रहों से दृष्ट हो वह 'विनष्ट' ग्रह होता है।

पाप ग्रहों से पराजित ग्रह क्रूराक्रान्त होता है। सूर्य के अत्यन्त समीप प्रविष्ट हुआ ग्रह 'रश्मिरहित' कहलाता है। पाप ग्रह से युक्त

होकर जब एक ही नवांश में हो तो **'क्रूर युक्त'** होता है। पाप ग्रह को पूर्ण दृष्टि होने पर ग्रह **'क्रूर दृष्ट'** होता है।

टिप्पणी—रश्मि का अर्थ अंश भी है। अतः अंश रहित ग्रह भी 'विरश्मिक' हो सकता है। **भुवनदीपक** आदि ग्रन्थों में सूर्य की राशि व अंशों के समान राश्यंश वाला या अत्यन्त निकटवर्ती अंशों वाला ग्रह रश्मिरहित होता है।

"प्रविविक्षुः प्रविष्टो वा सूर्यराशौ विरश्मिकः।"—भुवनदीपक

क्रूराक्रान्त से तात्पर्य है निसर्ग शत्रु ग्रहों से पराजित होना, जैसे—राहु के अत्यन्त निकटवर्ती अंशों में विद्यमान सूर्य।

"क्रूरेण जीयमानो यः राहुपार्श्वे यथा रविः।
क्रूराक्रान्तः स विज्ञेयः क्रूरयुक्तः समेऽशके ॥" भुवन दीपक

यह 'प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में भावग्रह प्रकरण समाप्त हुआ।

४ | भावोपचय प्रकरण

बली ग्रह के लक्षण :

स्वोच्चस्थः स्वभगः स्वमित्रगृहगो मूलत्रिकोणोपग-
स्तद्भागोऽगतोदिताधिहितभद्रेष्काणपूर्वोपगः ।
सेन्दुर्मित्रगणेक्षितश्चविजयी सौम्याङ्गतो गर्हितै-
र्नोदृष्टः सहितः सुगेहदयितः सन्मध्ययातो युवा ।।१।।

सत्सम्बन्धी तुंगगेहाभिलाष्या
रोही जाग्रत्सद्गणस्थोऽधिकांशुः ।
सुस्थानेशैः सद्भिराटोक्षितः षड्-
रूपानल्पौजा उताभानुमद्गः ।।२।।

वर्गोत्तमांशोपगतश्च पारि-
जातादिदिग्वर्गयुतोऽनृजुः सन् ।
सत्षष्टिभागोपगतः खगो यो
बली सनिद्राशयनोऽप्यसन्सन् ।।३।।

जो ग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित हो, स्वराशि में हो, मित्र ग्रह की राशि में हो, मूलत्रिकोण में हो अथवा अपने ग्रह, उच्च, मित्रग्रह या मूलत्रिकोण नवांश में स्थित हो तथा उदित हो, अधिमित्र की राशि या द्रेष्काण में स्थित हो, चन्द्र के साथ हो, मित्रग्रहों से दृष्ट हो, विजयी हो, उत्तर दिशा में स्थित हो, पापी ग्रहों से युक्त, दृष्ट, शुभ स्थानों (षष्ठ, अष्टम, द्वादश को छोड़कर) का स्वामी हो, शुभ ग्रहों के मध्य में हो, युवावस्था वाला हो—

शुभ ग्रहों से सम्बन्ध रखता हो, उच्चाभिलाषी आरोही, जाग्रत, शुभ वर्ग में स्थित, अधिक रश्मियों वाला, शुभ स्थानों के पतियों से युत व दृष्ट, छः अंशों से अधिक बल वाला, सूर्य से दूर स्थित।

वर्गोत्तमांश या पारिजातादि वर्ग में स्थित, शुभ, वक्री, अच्छे षष्ट्यंश में स्थित ग्रह बली होता है।

पापी ग्रह शयन या निद्रा अवस्थाओं में भी शुभ होता है।

टिप्पणी—ग्रह के उपर्युक्त गुणों का क्रमशः स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। ग्रहों की उच्च-नीच राशियां, राशियों का आधिपत्य, मित्रादि ग्रहों का विवेक, मूलत्रिकोण आदि विषय परिभाषा प्रकरण में पीछे बताए जा चुके हैं। शेष विषय यहां विवेचित किया जा रहा है—

(i) **उदित**—सामान्यत. ग्रह जब सूर्य के प्रकाश में छिप जाता है तो अस्त माना जाता है। राशिचार से ऐसी सम्भावना होती है। जो सूर्य से दूर है, जो अस्त नहीं है वह 'उदित' है। लेकिन उदित ग्रहों का लक्षण आकर ग्रन्थों में विस्तारशः भी बताया गया है। जब ग्रह सूर्य के निकट (राशि के निकट) गया हो तो ग्रह के कालांशों का ज्ञान कर लेना चाहिए। यदि सूर्य और अभीष्ट ग्रह के अन्तरांशों का मान कालांश से कम हो तो ग्रह 'अस्त' है तथा अधिक हो तो 'उदित' समझना चाहिए। ग्रहों के कालांश इस प्रकार हैं—चन्द्र-१२, मंगल-१७, बुध-१३, गुरु-११, शुक्र-९, शनि-१५। शुक्र व बुध यदि मार्गी हों तो इनके कालांशों में एक जोड़कर प्रयोग करना चाहिए।

(ii) **अधिमित्रादि**—पंचधा मैत्री चक्र से ज्ञात किया जा सकता है।

तात्कालिक मित्र + निसर्ग मित्र = अधिमित्र
तात्कालिक शत्रु + निसर्ग शत्रु = अधिशत्रु
तात्कालिक मित्र + निसर्ग सम = मित्र
तात्कालिक शत्रु + निसर्ग सम = शत्रु
सम + सम = सम

(iii) **विजयी**—सूर्य व चन्द के अतिरिक्त शेष भौमादि पांच ग्रह **'पंचताराग्रह'** कहलाते हैं। जब ग्रह सूर्य के साथ होता है तो वह **'अस्त'** होता है। जब चन्द्र के साथ होता है तो उसकी स्थिति को **'समागम'** कहते हैं। **सूर्य सिद्धान्त** में कहा गया है—

"ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ।
समागमः शशांकेन, सूर्येणास्तमनं सह ॥"

इन भौमादि ग्रहों का परस्पर युद्ध व समागम होता है। इस युद्ध के चार प्रकार होते हैं—**भेद, उल्लेख, अंशुविमर्दन व अपसव्य**। इनके

लक्षण **सूर्य सिद्धान्त** में बताए गए हैं, इन सबको जानना यहां निरुपयोगी है, तथापि विजयी ग्रह का लक्षण है कि उत्तर दिशा में स्थित हो तथा विपुल किरणों वाला हो तथा स्निग्ध हो। शुक्र दक्षिण दिशा में स्थित होकर विजयी होता है। जैसाकि पुलिशाचार्य का कथन है—

"सर्वे जयिनः उत्तरदिक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः।" इति

(iv) **सन्मध्ययात**— जो ग्रह अपने दोनों ओर द्वितीय और द्वादश भावों में शुभ ग्रहों से युक्त हो वह ग्रह अधिक बली होता है। ग्रन्थकार ने तीसरे प्रकरण (श्लोक २८) में यह बताया है।

(v) **युवा**—राशि के १२ अंश से १८ अंशों तक ग्रह 'युवा' होता है। ग्रहों की बाल, कुमार, युवा और वृद्ध और मृत ये पांच अवस्थाएं ६-६ अंशों की क्रमशः होती हैं।

(vi) **सम्बन्ध**—ग्रहों के परस्पर क्षेत्रादि चार सम्बन्ध पीछे प्रकरण १ श्लोक २४ में बताए जा चुके हैं।

(vii) **उच्चाभिलाषी**—क्रमशः सूर्यादि सातों ग्रह मीन, मेष, धनु, सिंह, मिथुन, कुम्भ व कन्या में उच्चाभिलाषी होते हैं। आशय यह है कि अपनी उच्च राशि की पहली राशि के जितने अधिक अंश गए होंगे उतना ही अधिक उच्चाभिलाषी ग्रह माना जाएगा। उच्चाभिलाषी ग्रह योगों से भी राजयोग होता है—

"यज्जन्मन्युच्चाभिलाषिग्रहयोगाः पतन्ति चेत्।
स नरो भूपपूज्यः स्याद् वंशे च नृपतिर्भवेत्॥"

(viii) **आरोही**—उच्चारोही, भावारोही, राश्यारोही नाम से इसके भेद बताए गए हैं। जब ग्रह अपनी नीच राशि से निकलकर अगली राशि में आया हो तो 'उच्चारोही' होता है। भावसन्धि से निकला ग्रह भावारोही तथा राशि में प्रविष्ट ग्रह राश्यारोही होता है। इनमें पहले दो भेद ही विशेष महत्त्व रखते हैं।

(ix) **जाग्रत**—देखें प्रथम प्रकरण का २२वां श्लोक टिप्पणी। अंशभेद से जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति अवस्थाओं के ज्ञान के अतिरिक्त विद्वानों ने प्रकारान्तर से भी इन्हें माना है—स्वनवांश या स्वोच्च नवांश में ग्रह हो तो **'जाग्रत'**, मित्र के नवांश में **'स्वप्न'** तथा नीच या शत्रु के नवांश में **'सुषुप्त'** होता है।

"उच्चांशं स्वनवांशं च जागरूकं वदन्ति हि ।
सुहृन्नवांशकं स्वप्नं सुप्तं नीचारिभांशकम् ।" इति

(x) **रश्मि**—अधिक रश्मियों वाला ग्रह बलवान् होता है। ये रश्मियां उच्चादि स्थिति के अनुसार अलग-अलग होती हैं। ग्रहों की रश्मियां इस प्रकार हैं—

सूर्य—१०, चन्द्रमा—९, मंगल बुध एवं शनि—५, गुरु—७, शुक्र—८।

उच्चगत ग्रह की रश्मियां तीन गुनी, मूलत्रिकोण में दुगुनी, स्वगृह में तीन से गुणा कर दो का भाग देने से आयी लब्धि के तुल्य होती हैं।

अधिमित्र के गृह में होने पर रश्मि संख्या को चार से गुणा कर दो का भाग देना चाहिए।

मित्र की राशि में छः से गुणा कर पांच का भाग देना चाहिए। शत्रुग्रह में दो से गुणा कर चार का भाग तथा अतिशत्रु की राशि में दो से गुणा कर पांच का भाग देना चाहिए।

(xi) **अभानुमद्गः**—असूर्यंग ग्रह बलवान होता है तथा अपना पूरा फल देने में समर्थ होता है। इसका आशय यह है कि जो ग्रह सूर्य के पीछे हों वे 'भानुमद्ग' हैं तथा जो सूर्य के पीछे नहीं हैं वे हुए 'अभानुमद्ग' अर्थात् 'असूर्यंग'। सूर्य से जो ग्रह अधिक दूर होगा वह अपना शुभाशुभ फल करने में अधिक समर्थ होगा। इस विशेषता का उल्लेख महाकवि कालिदास ने रघुवंश में रघु के जन्म के सम्बन्ध में भी किया है कि उसकी कुण्डली में पांच ग्रह उच्च राशि में स्थित थे तथा वे 'असूर्यंग' थे—

"ग्रहैस्ततः पंचभिरुच्चसंश्रयै-
रसूर्यगैः सूचितभाग्यसपंदम् ॥"

(xii) **वर्गोत्तम नवांश**—चरराशियों (मेष, कर्क, तुला, मकर) में पहला नवांश, स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) में पांचवां नवांश तथा द्विस्वभाव राशियों में नौवां नवांश **'वर्गोत्तम'** होता है। इसमें जन्म लेना अत्यन्त भाग्यशालिता का सूचक है। श्री वराह ने कहा है—**शुभं वर्गोत्तमे जन्म इति**

(xiii) **पारिजातादि वर्ग**—होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश आदि दसों

वर्गों में जो ग्रह अपने उच्चवर्ग, मूलत्रिकोणवर्ग, अतिमित्रवर्ग, स्ववर्ग या वर्गोत्तम में हो तो उसको अलग लिख लेना चाहिए। इसी तरह की स्थिति यदि दो वर्गों में हो तो **पारिजात**, तीनों में होने पर **उत्तम**, चार में होने पर **गोपुर**, पांच में **सिंहासन**, छः से **पारावत**, सात से **देवलोक**, आठ से **ब्रह्मलोक**, नौ से **ऐरावत** तथा दस से **'श्रीधाम'** होता है।

(xiv) **शुभ षष्ट्यंश**—सप्तांश, नवांश, त्रिशांश की तरह ही षष्ट्यंश होता है। एक राशि के ६० षष्ठ्यंश अर्थात् ३० कला का १ षष्ट्यंश होता है। इसे जानने के लिए स्पष्ट ग्रह की राशि संख्या को छोड़कर शेष की कला बनाकर उसमें ३० का भाग देना चाहिए। लब्धि में एक जोड़कर जो संख्या आए, वही षष्ठ्यंश है। प्रत्येक षष्ठ्यंश का एक देवतांश होता है जो सम व विषम राशियों का अलग होता है। उनमें देव, कुबेर आदि देवतांश शुभ होते हैं।

यदि ग्रह शुभ षष्ठ्यंश में स्थित हो तो बलवान होता है।

देवतांशों के नाम इस प्रकार हैं।

विषम राशि देवतांश—घोर, राक्षस, देव, कुबेर, यक्ष, किन्नर, भ्रष्ट, कुलघ्न, गरल, अग्नि, माया, प्रेतपुरीष, अपाम्पति, देवगणेश, काल, अहिभाग, अमृत, चन्द्र, मृदंश, कोमल, हेरम्ब, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देव, अद्रि, कलिनाश, क्षितीश्वर, कमलाकर, मान्दी, मृत्युकर, काल, दावाग्नि, घोर, यम, कण्टक, सुधा, अमृत, पूर्णचन्द्र, विष प्रदग्ध, कुलनाश, वंशक्षय, पातक, काल, सौम्य, मृदु, शीतल, दंष्ट्राकराल, इन्दुमुख, प्रवीण, कालाग्नि, दण्डायुध, निर्मल, शुभाकर, क्रूर, अतिशीतल, सुधा, पयोधि, भ्रमण और इन्दुरेखा। ये देवतांश क्रमशः बताए गए हैं।

समराशियों के लिए इन्दुरेखा भ्रमण आदि से विपरीत गणना द्वारा पहले, दूसरे आदि षष्ठ्यंश के देवतांश जानने चाहिएं।

(xv) **शयनावस्था**—ये अवस्थाएं पूर्वोक्त जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं से पृथक् हैं तथा इनकी संख्या १२ है—

शयन, उपवेशन, नेत्रपाणि, प्रकाशन, गमन, आगमन, आस्था, आगम, भोजन, नृत्यलिप्सा, कौतुक तथा निद्रा।

इसे जानने के लिए सूर्यादि ग्रह जिस नक्षत्र में हों, उस नक्षत्र की संख्या अश्विनी, भरणी आदि क्रम से जान लें। इस संख्या को सूर्य

चन्द्रादि क्रम से ग्रहों की क्रमसंख्या से गुणा करें। तब ग्रह के स्पष्ट गतांशों से इस संख्या को गुणा करें तथा इसे एक तरफ स्थापित कर लें।

अब जन्मेष्ट घड़ी, जन्म नक्षत्र संख्या तथा जन्म लग्न संख्या का योग करके योगफल को पूर्वोक्त संख्या में जोड़ें। इस योगफल में १२ से भाग देने पर जो संख्या शेष बचे वही क्रमशः उस ग्रह की शयनादि अवस्था होगी।

ग्रहों के बल का परिमाण :

पूर्णं शुभं तंगगृहेंऽघ्रिहीनं
कोणे स्वभेऽर्द्धं सखिभेंऽघ्रितुल्यम्।
फलं गजांशप्रमितं समर्क्षे
मूढेऽरिभे निम्नगृहे शुभं खम्।।४।।

उच्च राशि में स्थित ग्रह पूर्ण फल प्रदान करता है। मूलत्रिकोण में ७५% शुभ फल करता है। अपनी राशि में ५०%, मित्र की राशि में २५% शुभ फल प्रदान करता है। सम ग्रह की राशि में १२.५%, अस्त, शत्रु राशि में स्थित, नीच राशि में स्थित ग्रह शून्य फल (शुभ) कारक होता है।

स्थानादि बलों में पूर्ण बल का मान :

षट्कं च सार्द्धं बलमार्य्यहेल्योः
षट्कं विधोः सप्तकमिन्दुसूनोः।
बलं मरुद्रूपमितिः कुजार्क्योः
स्यात्पञ्चरूपं सदलं सितस्य।।५।।

सूर्य और गुरु का बल ६½ अंश, चन्द्रमा का ६ अंश, बुध का ७, मंगल व शनि का ५ तथा शुक्र का ५½ अंश बल होता है। स्थानादि षड्बलों में पूर्वोक्त मान से अधिक बल होने पर ग्रह को पूर्णबली माना जाएगा। (सामान्यतः ६ अंश से अधिक बल वाले ग्रह को पूर्णबली माना जाता है।)

जन्म कुण्डली व चन्द्र कुण्डली का फल निर्णय :

होराब्जयोर्भावतदीयनायक-
तत्कारकैस्तद्युतवीक्षकग्रहैः।

तदीयवर्गैरपि भावसम्भव-
फलानि सर्वाणि विचिन्तयेद्बुधः ।।६।।

जन्म लग्न या चन्द्र लग्न दोनों में से जो अधिक बली हो उसी से तन्वादि द्वादश भावों के कारक, भावेश, भाव, स्थितग्रह और दृष्टि-कारक ग्रहों से भाव विशेष के फल का ज्ञान करना चाहिए। फलादेश के समय उपर्युक्त ग्रहों के सप्तवर्गों का भी निरूपण कर लेना चाहिए। ऐसा विद्वानों ने कहा है।

टिप्पणी—उपर्युक्त कथन की पुष्टि **'जातकादेश मार्ग'** नामक ग्रन्थ के कथन से हो जाती है—

"सर्वत्रभावग्रह तत्पतिकारकाख्यैस्तद्युक्तवीक्षकखगैरपि तद्गणैश्च ।
चिन्त्यानि भावजफलान्यखिलानि युक्त्या, नृणां विलग्नभवनादथवा-
शशांकात् ।।" इति

भाव, भावेश, कारक, युक्त व दृष्टि कारक ग्रहों और उनके बल से चन्द्र या लग्न कुण्डली द्वारा भावजनित फल का निर्देश करना चाहिए।

शुभाशुभ ग्रहों का फलकर्तृत्व

सन्त्युत्तमा भावफलानि कुर्य्यु-
रन्यानि हन्युर्विपरीतमन्ये
एकग्रहासच्छुभकारकत्वे
प्राप्ते बलीप्रेयफलोऽन्यथाऽन्यः ।।७।।

शुभ ग्रह शुभ भाव फल करते हैं तथा अशुभ भाव फल का नाश करते हैं।

इसके विपरीत पाप ग्रह अशुभ फल करते हैं तथा भावों के शुभ फल का नाश करते हैं।

यदि एक ही ग्रह शुभ व अशुभ दो भावों या वस्तुओं का कारक हो तो यदि वह बली है तो शुभ फल करेगा तथा निर्बल होने पर अशुभ फल करेगा।

परिस्थितिवश शुभ ग्रह की क्रूरता तथा पाप ग्रह की सौम्यता :

सोर्ज्जाः खलाः सद्गणगाश्च सौम्याः
प्रायेण सद्वर्गगसौम्यदृष्टाः।

सन्तोऽबला:पामर वर्गगाश्च
पापा असद्वर्गगपापदृष्टाः ।।८।।

पापी ग्रह बली होकर शुभ वर्ग में स्थित हो अथवा शुभ वर्ग में स्थित होकर शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो शुभ फलदायक होता है।

शुभ ग्रह यदि निर्बल होकर पापवर्ग में हो अथवा पापवर्ग में स्थित होकर पापग्रहों से दृष्ट हो तो अशुभ फल देने वाला होता है।

भावाधिपति की प्रधानता :

यस्माद्भावाद्यत्फलं चिन्त्यमस्य
नाथाच्चिन्त्यं तत्फलं भावगा नो ।
कर्त्तुं शक्ता भाववृद्धि त्रिकेऽरि-
राशौ मूढे दुर्बले भावनाथे ।।६।।

तन्वादि द्वादश भावों में जो भाव विचारणीय हो, उससे जो शुभाशुभ फल ज्ञात होता हो, उस फल का विचार भावेश से भी करना चाहिए।

यदि किसी स्थान का स्वामी षष्ठ, अष्टम, द्वादश भाव में हो या शत्रु राशि में या अस्त या निर्बल हो तो प्रस्तुत (विचारणीय) भाव में विद्यमान ग्रह समर्थ होते हुए भी उस स्थान की वृद्धि करने में समर्थ नहीं होंगे।

टिप्पणी—यदि किसी स्थान में बली ग्रह विद्यमान हो लेकिन उस भाव का स्वामी पूर्वोक्त प्रकार से स्थित हो तो वह भाव प्राय: कम-जोर हो जाता है। अत: भाव स्थित ग्रहों की अपेक्षा भावेश की स्थिति अधिक निर्णायक है। वैद्यनाथ ने भी ऐसा ही कहा है—

"दु:स्थाने वारिगे मूढे दुर्बले भावनायके ।
भावस्य सम्पदं कर्त्तुं न शक्ता भावमाश्रिताः ।।" इति

भावानुभव योग विचार :

भावाधिपः कारकखेचरश्च
यस्येष्टभावोपगतौ सवीर्य्यौ
तदा समस्तोऽनुभवक्षमश्च
भवेत्स भावो नियतं नराणाम् ।।१०।।

भावेश और भावकारक ग्रह ये दोनों वली होकर जहां स्थित हों उस भाव से दूसरे, आठवें व छठे भाव को छोड़कर शेष भावों को भी फलानुभव कराते हैं, अर्थात् इनका बल प्रभाव उन भावों पर भी पड़ता है।

टिप्पणी—आशय यह है कि जो ग्रह बली होगा वह जिन भावों का अधिपति है उन भावों को तो वल पहुंचाएगा ही, साथ ही जहां स्थित है वह भाव जहां से छठा, आठवां व वारहवां नहीं पड़ता उन सभी शुभ भावों को भी बल पहुंचाएगा। अर्थात् अपने स्थित भाव से ३, ४, ५, ७, ९, १०, ११, १२ भावों का भी फलानुभव कराएगा।

भाववृद्धि विचार

भावश्च भावेश्वरभावकारकौ
भावोपगो भावसमीक्षकश्च ये।
सत्खेटसम्बन्धवशेन ते चिंतिं
भावस्य कुर्य्युर्यदि सद्वलान्विताः ॥११॥

जिस भाव पर विचार किया जा रहा हो, उस भाव का स्वामी, उस भाव का कारक ग्रह, उस भाव में विद्यमान ग्रह, उस भाव को देखने वाला ग्रह तथा स्वयं वह भाव ये पांचों शुभ बल से युक्त होकर शुभ ग्रहों से सम्बन्ध रखते हों तो निश्चय ही उस भाव की वृद्धि करते हैं।

यो भावः सुगृहेश्वरेण बलिना जीवेन दृष्टोऽथवा
स्वीयेशेन बलान्वितेन सहितो दृष्टो ज्ञजीवेक्षितः।
यद्वा तैः परिलोकितान्वित उतेशेज्यज्ञभैर्नेतरैः
सोज्ज्ञैः स्वालयपैः शुभैः स्वविभुना युक्तेक्षितस्तच्चितिः ॥१२॥

जो स्थान शुभ स्थानों (षष्ठ, अष्टम, द्वादश को छोड़कर) के स्वामी बृहस्पति से दृष्ट होगा, वह वली माना जाएगा।

जो भाव अपने बलवान स्वामी से युत व दृष्ट हो अथवा बुध, गुरु से दृष्ट हो तो उस स्थान की वृद्धि होती है।

यदि किसी स्थान का स्वामी बुध और गुरु से दृष्ट हो तथा अन्य किसी भी ग्रह की दृष्टि उस पर न हो तो वह भाव बली होगा।

अपने भावेश, बुध, गुरु और शुक्र से जो भाव युत व दृष्ट होगा तथा अन्य ग्रहों से युत अथवा दृष्ट नहीं होगा तो भाव बली समझा जाएगा।

शुभ स्थानों के स्वामियों से अथवा शुभ ग्रहों से जो स्थान युत व दृष्ट होगा तथा दूसरे किसी ग्रह की वहां युति या दृष्टि नहीं होगी तो उस भाव की वृद्धि होगी।

टिप्पणी—बुध या गुरु की दृष्टि व युति जहां नितान्त असम्पृक्त रूप से होती है अर्थात् अन्य ग्रहों का युति दृष्टि सम्बन्ध जहां नहीं होता है केवल ये दो ग्रह ही अपनी पूर्ण दृष्टि रखते हैं तो उस भाव को निश्चय से बहुत वृद्धि प्रदान करते हैं—

'होरास्वामि (भावेश) गुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटाः।'

(वराह)

किसी आचार्य के मत से शुक्र भी इसी तरह बल प्रदान करता है—

ये ये भावाः सितज्ञामरगुरूपतिभिः संयुता वीक्षिता वा।
नान्यैर्दृष्टा न युक्ता यदि शुभफलदा मूर्तिभावादिकेषु॥"

(वैद्यनाथ)

सामान्यतः जो स्थान अपने स्वामी ग्रह से युत व दृष्ट हो अथवा जिसे शुभ ग्रह देखते हों वह बलवान होता है—

"यो यो भावः स्वामिदृष्टोयुतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्याभिवृद्धिः।" (पृथुयशा)

यो भावोऽसत्खेटयोगेक्षणोनो
युक्तो दृष्टोऽस्तारिनिम्नर्क्षगोनैः।
सुस्थानेशैः स्वामिसौम्यग्रहेन्द्रै
र्वाच्या वृद्धिस्तस्य भावस्य नूनम्॥१३॥

जो भाव पाप ग्रहों की युति और दृष्टि से रहित हो, अस्तंगत, शत्रु ग्रह की राशि में स्थित और नीच राशिगत ग्रहों को छोड़कर शुभ स्थानों के स्वामियों या अपने स्वामी से दृष्ट या युत हो, अथवा शुभ ग्रहों की जहां युति व दृष्टि हो, उस स्थान का उपचय (वृद्धि) होता है।

यो भाव ईशेन शुभैश्च वीक्षितो
भावाधिपोऽप्युत्तमसंयुतो युवा ।
जाग्रत्कुमारो यदि दीप्तगस्तदा
तद्‌भावजन्यं सुखमाप्नुयाज्जनः ।।१४।।

जो स्थान अपने स्वामी तथा शुभग्रहों से दृष्ट हो और भावेश स्वयं भी शुभग्रहों से युक्त हो, युवा, जाग्रत, कुमार या दीप्त अवस्था में हो तो मनुष्य को उस भाव से सम्बन्धित विषयों का सुख मिलता है।

टिप्पणी—ग्रहों की दस अवस्थाएं बतायी गई हैं—

दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त, शक्त, प्रपीड़ित, दीन, खल, विकल और भीत।

अपनी राशि में—स्वस्थ, मित्र की राशि में—मुदित, मूल त्रिकोण या उच्च में—दीप्त, उच्च व चेष्टा रश्मियों से शुद्ध—शक्त, शुभवर्ग में—शान्त, शत्रुराशि या नवांश में—दीन, अस्तंगत—विकल, नीचगत—भीत, पापवर्गगत—खल तथा ग्रहयुद्ध में पराजित—प्रपीड़ित होता है। इन अवस्थाओं का कलात्मक बल क्रमशः इस प्रकार माना गया है—दीप्त—६० कला, स्वस्थ—५४ कला, मुदित—४८ कला, शान्त—४२ कला, शक्त—३६ कला, पीड़ित—३० कला, दीन—२४ कला, खल—१८ कला, भीत—१२ और विकल—६ कला होता है।

यन्मन्दिरेशो हरिजात्त्रिकोणगः
केन्द्रोपगो वा सुकृतग्रहेक्षितः।
सारैरुपेतो निजतुंगपूर्वग-
स्तद्वेश्मनः सन्फलपुष्टिमादिशेत् ।।१५।।

जिस स्थान का स्वामी लग्न से केन्द्र या त्रिकोण स्थानों में स्थित हो, शुभग्रहों से दृष्ट हों, बलयुक्त हो अथवा उच्च, स्व, मित्र या मूल-त्रिकोण में स्थित हो तो उस भाव के फल की पुष्टि करता है।

टिप्पणी—'हरिज' शब्द का अर्थ जन्म लग्न है। वराह ने कहा है कि जिस लग्न में गर्भ मोक्ष हो वह 'हरिज' होता है।

'यद्वद्राशिर्व्रजति 'हरिजं गर्भमोक्षः'। इति

यद्भावाप्तिस्वापतेयानुजस्था
यद्भावेशेष्टास्तदुच्चाधिनाथाः ।
कुर्युस्ते तद्भावपुष्ट्यूर्ज्जकंचेन्
नास्तंयाता नारिनीचर्क्षयाताः ।।१६।।

जिस भाव से तीसरे, दूसरे और ग्यारहवें में स्थित ग्रह, उस भाव के स्वामी ग्रह के मित्र हों, अथवा भावेश की उच्चराशि के स्वामी हों तथा वे अस्त, नीचगत या शत्रुस्थानगत न हों तो उस भाव की अवश्य ही पुष्टि करते हैं ।

टिप्पणी—उदाहरणार्थ—लग्न स्थान का विचार करना है तो देखना होगा कि लग्न से दूसरे, तीसरे व ग्यारहवें स्थानों में कौन-कौन ग्रह स्थित हैं ? यदि वे ग्रह बली हों, शत्रु, नीच राशिगत या अस्त नहीं हैं तो उनका लग्नेश के साथ सम्बन्ध देखा जाएगा । यदि वे लग्नेश के मित्र हैं तो लग्न की पुष्टि करेंगे । यदि वे लग्नेश की उच्च राशि के राशीश हैं तो भी वे उक्त भाव की अभिवृद्धि करेंगे ।

तन्वाद्येषु गृहेषु सत्खचरभोपेतेषु तत्स्वामिभि-
र्दृष्टाढ्येषु तदीयवृद्धिरुदिता नोपेतदृष्टेष्वघैः ।
कल्याणायकुटुम्बकामभवनान्येभिश्चतुर्भिबलैः
संयुक्तैर्मनुजस्य यस्य जनने सोऽनूनकार्थान्वितः ।।१७।।

जिन तन्वादि स्थानों में शुभग्रहों की राशि हो और वे अपने-अपने स्वामियों से युत व दृष्ट हों और पापग्रहों की वहां पर युति या दृष्टि न हो तो उन-उन भावों की वृद्धि कही गई है ।

जिस व्यक्ति के जन्म समय नवम, एकादश, द्वितीय और सप्तम ये चारों स्थान बली होंगे वह समस्त सम्पदाओं से युक्त होगा ।

यन्निकेतनगतो भवनाथो
यन्निकेतपतिना स उपेतः ।
वस्तुनो भवति तत्सदृशस्य
लाभ एवमुदितं फलितज्ञैः ।।१८।।

लाभ स्थान का स्वामी जिस स्थान में स्थित हो अथवा एकादशेश

जिस स्थान के स्वामी से युक्त हो, उस भाव से सम्बन्धित पदार्थों का लाभ होता है।

टिप्पणी—उदाहरणार्थ—लाभ स्थान का स्वामी यदि धनस्थान में होगा तो धन की वृद्धि करेगा। यदि लाभेश के साथ पंचमेश होगा तो विद्या सन्तानादि का लाभ होगा।

भावेश के बलानुसार भाव की पुष्टि :

यद्भावेशस्त्रिभवगुरुधीकेन्द्रगः स्वोच्चमित्र-
स्वर्क्षांशस्थो यदि बलवतोः सौम्ययोरेत्य संस्थः।
मध्ये तत्पः शुभदिविचरैर्युक्तदृष्टः किमुच्च-
र्क्षस्थः खेटः स चपलमतुलां भाववृद्धिं करोति॥१९॥

जिस स्थान का स्वामी ग्रह तृतीय, केन्द्र या त्रिकोण स्थानों में अपनी उच्चराशि, स्वराशि, मित्रराशि या अपने उच्च नवांश में स्थित होगा, अथवा शुभग्रहों के बीच में स्थित होगा (ग्रह के पिछले व अगले भावों में कम-से-कम एक-एक शुभ ग्रह होगा) अथवा भावेश जहां है, उस स्थान का स्वामी यदि शुभ ग्रहों से युत व दृष्ट होगा अथवा उच्चस्थ होगा तो वह ग्रह उससे सम्बन्धित पदार्थों की विपुल वृद्धि करता है।

टिप्पणी—भावेश के आधार पर भाव पुष्टि की ये स्थितियां होती हैं—

(क) भावेश तृतीय केन्द्र व त्रिकोण स्वोच्चादि राशि में स्थित हो।

(ख) भावेश को शुभ मध्यत्व प्राप्त हो।

(ग) भावेश की अधिष्ठित राशि का स्वामी शुभ ग्रहों से युत व दृष्ट अथवा उच्चस्थ हो।

इनका समर्थन **उत्तर कालामृत** में भी किया गया है।

स्वक्षत्रिकोणोच्चसुहृत्समन्वितो
राश्यंशवर्गोत्तम उत्तमग्रहः।
स्यात्सौख्यकृच्चेदथ पापखेचरो-
ऽप्येवं विधः सौख्यकरः समीरितः॥२०॥

ग्रह अपनी राशि, मूलत्रिकोण राशि या मित्र राशि में स्थित हो अथवा मित्र से युक्त हो अथवा स्वनवांश, उच्चनवांश या मित्र के नवांश में हो तो शुभ या क्रूर किसी भी प्रकार का ग्रह सौख्य कारक बताया गया है।

यद्भेश्वरस्थर्क्षलवेश्वरा बलो-
पेता यदा तद्भपतिस्तु लाभकृत्।
यस्यर्क्षभागोपगतो बली हित-
खेटः सुखेटोऽपि तदर्थदो मतः ।।२१।।

जिस राशि का स्वामी जहां स्थित हो वह राशीश तथा जिस ग्रह के नवांश में हो यदि वह नवांशेश बली हो तो वह ग्रह लाभकारक होता है। जिस ग्रह की राशि में अथवा नवांश में बल युक्त मित्रग्रह या शुभग्रह हो तो भी उससे सम्बन्धित पदार्थ की वृद्धि करता है।

टिप्पणी—इस विषय का उल्लेख **उत्तरकालामृत** में भी किया गया है।

'यद्भेशास्थितभांशपा बलयुताश्चेत्तद्भपो लाभकृत्,
यस्यांशर्क्षगतो बली हितखगः सौम्योऽपि तस्यार्थदः ।।"

आशय यह है कि जिस स्थान का स्वामी जहां होगा, यदि उस स्थान का स्वामी तथा ग्रह के नवांश का स्वामी बली हो तो अपने मूल स्थान को शक्ति देंगे।

इसी तरह ग्रह जहां स्थित है, वहां की राशि में अथवा वहां की नवांश राशि में यदि स्थित ग्रह का मित्र बली होगा तो वह ग्रह जिस स्थान का स्वामी होगा, वहां के पदार्थों की अभिवृद्धि करेगा। उदाहरणार्थ—वृश्चिक लग्न में बृहस्पति धनेश तथा पंचमेश होकर मकर राशि तृतीय स्थान में स्थित है। वहां मकर राशि में मिथुन का छठा नवांश है। यदि बृहस्पति का मित्र ग्रह मिथुन या मकर राशि में होगा तो बृहस्पति के स्थानों (द्वितीय, पंचम) की वृद्धि करेगा।

यह 'प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में भावोपचय प्रकरण समाप्त हुआ।

५ | भावापचय प्रकरण

निर्बल ग्रह के लक्षण :

नीचार्य्यध्यरिभांशगोऽस्तमनगोऽसत्षष्टिभागोपगो
युद्धेऽन्यैर्विजितोऽरिदृष्टसहितो विद्धंगभान्तस्थितः ।
बालत्वस्थविरत्वगस्त्रिकपतिस्तद्दृष्टयुक्तो मृतो
वृद्धश्च त्रिकगस्त्वसद्गणगतो रूक्षोऽवरोही ततः ।।१।।

क्रूराक्रान्तकृशांशुपावकखसन्मध्यस्थितोऽसत्खस-
त्सम्बन्धी तृषितो गुणाल्पकबली संक्षोभितो लज्जितः ।
द्वाविंशत्त्रिलवेश्वरो गुलिकपो मांद्यृक्षनाथश्चतुः-
षष्ट्यंशाधिपतिस्तदीक्षितयुतः क्षुत्पोडितौत्पातिकः ।।२।।

नीचाभिलाषी खलकर्त्तरीस्थो-
ऽसद्दृष्टयुक्तो विहगो विवीर्य्यः ।
निद्रांगतो वा शयितः शुभोऽस-
न्पापाभ्रवासोऽप्यनृजुस्तथैव ।।३।।

नीच राशि में स्थित, शत्रु राशि में स्थित, अधिशत्रु की राशि में, नीच नवांश में, अस्तंगत, क्रूर षष्ठ्यंश में स्थित, ग्रह युद्ध में पराजित, चर या स्थिर राशि के अन्तिम अंश में स्थित, शत्रुग्रहों से दृष्ट या युक्त बाल या वृद्धावस्था में विद्यमान, दुष्ट (६, ८, १२) स्थानों का स्वामी, दुष्ट स्थान के स्वामी से दृष्ट या युक्त, मृतावस्था को प्राप्त. दुष्ट स्थान में स्थित, पापी ग्रहों के वर्ग में स्थित, रूखी कान्ति वाला, अवरोही।

क्रूर ग्रह से आक्रान्त, कम रश्मियों वाला, पापग्रहों के मध्य में स्थित, पाप ग्रहों से सम्बन्ध रखने वाला, तृषित अवस्था में, तीन अंशों से कम बल वाला, क्षोभित अवस्था में विद्यमान, लज्जित अवस्था वाला, बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी, गुलिक या मान्दि की राशि का स्वामी, चौसठवें नवांश का स्वामी, बाईसवें द्रेष्काण या चौसठवें नवांश के स्वामियों से दृष्ट, दैवी-भौम या अन्तरिक्ष के उत्पातों से पीड़ित ग्रह—

नीचाभिलाषी, खलकर्त्तरी में स्थित, पाप ग्रहों से दृष्ट या युक्त ग्रह निर्बल होता है। शयितावस्था वाला तथा वक्री पाप ग्रह भी निर्बल होता है।

टिप्पणी—(i) ग्रह जिस राशि में उच्च होता है, उससे सातवीं राशि में नीच हो जाता है। नीच ग्रह शत्रु या अधिशत्रु आदि की राशि में बलरहित हो जाता है। **उत्तरकालामृत** का कथन है—

'दुःस्थानान्निगतोऽरिनीचगृहगश्चास्तंगतो वापियः।'
तद्भावस्य विनाशनं निगदितं लग्नादिभानां क्रमात् ॥

(ii) चर स्थिर राशियों के तीसवें अंश में ग्रह निर्बल होता है। द्विस्वभाव राशियों में यदि यह स्थिति हो तो ग्रह वर्गोत्तमांशगत होने के कारण बली हो जाता है।

(iii) बालावस्था या वृद्धावस्था पीछे बतायी जा चुकी है। लेकिन एक अन्य प्रकार से भी ग्रह बाल या वृद्ध होता है। जब ग्रह सूर्य के मण्डल से कुछ अंशों पहले ही निकला हो अर्थात् उदित हुए कुछ अंश ही बीते हों तो भी ग्रह बाल होता है और सूर्य मण्डल में प्रवेश करने को तत्पर ग्रह वृद्ध होता है। स्वयं ग्रन्थकार मुकुन्द दैवज्ञ का कथन है—

"बालत्वेति सूर्यमण्डलान्निर्गत ग्रहः कतिचिद्दिनानि यावत् बालत्वं व्रजति तदानीं स ग्रहो निर्बलो ज्ञेयः सूर्यांशुनिर्गतत्वात् ।
यो ग्रहो रविमण्डलं विविक्षुः स कतिचिद्दिनानि यावत् स्थविरत्वं व्रजति···अस्ताभिलाषित्वात् ॥"

(iv) षष्ठ, अष्टम, द्वादश भावों का अधिपति, इनसे दृष्ट या युक्त ग्रह निर्बल होता है, इससे वैद्यनाथ भी सहमत हैं।

(v) अवरोही ग्रह भाव से अवरोही, उच्च से अवरोही या राशि से अवरोही होता है। आरोही की विपरीतावस्था अवरोही है। वराह ने कहा है—**'भ्रष्टस्य तुंगादवरोहिसंज्ञः।'**

लेकिन ग्रन्थकार भाव व राश्यवरोही भी मानते हैं—

"अथवा भावात्परिच्युतो ग्रहोऽवरोही, राशिदलात्परिच्युतो ग्रहो वा।"

(vi) क्रूराक्रान्त ग्रह वह है जो महा अशुभ ग्रहों से युत या दृष्ट, अथवा सूर्य की रश्मियों में प्रविष्ट या विनष्ट अवस्था वाला हो।

(vii) लज्जितादि छह अवस्थाएं होती हैं—लज्जित, गर्वित, क्षुधित, तृषित, मुदित और क्षोभित।

इनमें से लज्जित, तृषित व क्षोभित अवस्था वाले ग्रह निर्बल होते हैं।

उच्च या मूल त्रिकोण में ग्रह को—**गर्वितावस्था,** मित्र राशि में स्थित या मित्र दृष्ट युक्त अथवा गुरु युक्त होने पर—**मुदितावस्था,** पंचम स्थान में शनि, सोम, सूर्य, राहु से युक्त हो तो—**लज्जितावस्था,** सूर्य से युक्त होकर पाप तथा शत्रु ग्रह से दृष्ट हो तो—**क्षोभितावस्था,** शत्रु राशि में स्थित होकर शत्रु ग्रह या शनि से युक्त दृष्ट होने पर—**क्षुधितावस्था,** जलराशि में स्थित होकर पाप व शत्रु ग्रहों से युत दृष्ट हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो तो—**तृषार्तावस्था।**

(viii) ग्रह यदि अपने स्थित द्रेष्काण से बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी हो तो निर्बल होता है। बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी मृत्यु का कारण होता है। बृहज्जातक में बताया गया है—

"द्वाविंशः कथितस्तु कारणं द्रेष्काणो निधनस्य सूरिभिः।
तस्याधिपतिर्भवोऽपि वा निर्याणं स्वगुणैः प्रयच्छति॥"

इसी द्रेष्काणेश या उस द्रेष्काण की राशि में स्थित ग्रह के पदार्थों में से ही कोई मृत्यु का कारण होता है।

जन्म के समय चन्द्रमा जिस नवांश में हो उससे चौसठवें नवांश का स्वामी ग्रह भी निर्बल होता है। कारण यह है कि वह छिद्राधिपति होता है। जातक पारिजात में छिद्राधिपति इस प्रकार बताए गए हैं—

"रन्ध्रेश्वरो रन्ध्रयुक्तो रन्ध्रद्रष्टा खरेश्वरः।
रन्ध्राधिपयुतश्चैव चतुःषष्ट्यंश नायकः॥
रन्ध्रेश्वरातिशत्रुश्च, सप्तच्छिद्रग्रहाः स्मृताः॥" इति

"अष्टमेश, उससे युक्त, अष्टम स्थान को देखने वाला, खराधिप अष्टमेश से युक्त, चौसठवें नवांश का स्वामी तथा अष्टमेश का अतिशत्रु ये सात छिद्रग्रह होते हैं।

(ix) गुलिक और मान्दि ये दो शनि के पुत्र माने गए हैं तथा अत्यन्त दुष्ट स्वभाव के होते हैं। ऐसा **माण्डव्य ऋषि** का मत है। ये जहां स्थित होते हैं, वहीं हानिप्रद होते हैं। इनकी स्पष्टीकरण विधि प्रायः सुलभ है।

(x) खल कर्त्तरीस्थ से तात्पर्य है कि जिस ग्रह के दूसरे स्थान में कुण्डली में वक्री पाप ग्रह हो तथा बारहवें स्थान में मार्गी पाप ग्रह हो तो वह दुष्ट ग्रहों की कर्त्तरी में स्थित माना जाता है।

वक्री पाप ग्रह [पाप+अभ्र (आकाश) वासः (रहने वाला)] भी अशुभ फलदायक होता है तथा शयित पापी या शुभ ग्रह भी फल हन्ता होता है। **कल्याण वर्मा** ने कहा है—

"वक्रिणस्तु महावीर्याः शुभा राज्यप्रदाः ग्रहाः।
पापा व्यसनदाः पुंसां कुर्वन्ति च वृथाटनम्॥"

ग्रहों के अशुभ फल का परिमाण :

तुंगेऽशुभं खं चरणं त्रिकोण
आत्मीयभेऽर्द्धं सखिभे त्रिपादम्।
वीभांशतुल्यं समभेऽरिभे च
मूढेऽधरे पूर्णमसत्फलं स्यात्॥४॥

अपनी उच्च राशि में स्थित ग्रह पूरा शुभ फल करने वाला होता है, अर्थात् शून्य अशुभ फल करता है। मूल त्रिकोण राशि में चौथाई अशुभ व शेष शुभ फल कारक होता है।

अपनी राशि में दो पाद अर्थात् आधा अशुभ फल करता है। मित्र राशि में तीन पाद अशुभ फल, समग्रह की राशि में आठवां हिस्सा छोड़ कर शेष अशुभ फल करता है। नीचगत, शत्रु राशिगत, असंगत ग्रह पूरा अशुभ फल करता है।

टिप्पणी—आशय यह है कि यदि ग्रह सभी तरह से विचार करने पर अशुभ फल कारक हो तो उसके अशुभ फल की मात्रा क्या होगी, इसके लिए उपर्युक्त प्रकार से विचार करना चाहिए। यदि ग्रह अपने उच्च में स्थित है तो वह अशुभ प्रतीत होता हुआ भी शून्य कला अशुभ फल करेगा। मूल त्रिकोण में १५ कला अशुभ फल कारक होगा। अपनी राशि में ३० कला, मित्र की राशि में ४५ कला अशुभ फल करेगा। समग्रह की राशि में ५२½ कला अशुभ फल करेगा तथा नीच राशि में स्थित, शत्रु राशिगत या अस्तंगत ग्रह ६० कला अशुभ फल अर्थात् शून्य कला शुभ फल करेगा। **कल्याण वर्मा** ने इसी मान से ग्रहों का अशुभ फल माना है।

भावापचिति (हानि) योग :

भावो यस्त्रिकपेन वाघखसदा युक्तोऽथवा वीक्षितः
किंवा यस्य निकेतनस्य रमणो दुष्टालयस्थोऽथवा।
यद्भावस्य विभुर्व्ययारिनिधनाधीशैर्युतो वेक्षितो
हानिस्तद्भवनस्य चेच्छुभकरैर्नाविक्षितः संयुतः ॥५॥

जिस भाव का विचार करना अभीष्ट हो, यदि वह भाव षष्ठ, अष्टम और द्वादश भाव के अधिपति से अथवा पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो, अथवा जिस स्थान का स्वामी दुष्ट स्थानों (६, ८, १२) में स्थित हो, अथवा जिस भाव का स्वामी, दुष्ट स्थानों के अधिपति से युक्त हो या दृष्ट हो तथा शुभग्रहों से दृष्ट या युत न हो तो उस भाव की हानि होती है।

टिप्पणी—भाव हानि की ये स्थितियां बतायी हैं—
(i) भाव में दुष्ट स्थानेश या पाप ग्रह हो या उनकी दृष्टि हो।
(ii) भावेश दुष्ट स्थानों में हो।
(iii) भावेश दुष्ट स्थानेशों से युक्त या दृष्ट हो।

इन सभी परिस्थितियों में शुभग्रहों की दृष्टि विचारणीय स्थल पर नहीं होनी चाहिए। शुभ ग्रहों की पूर्ण दृष्टि अशुभ फल का नाश करेगी। वैद्यनाथ ने ऐसा ही कहा है—

"यद्भावनाथो रिपुरिःफरन्ध्रे, दुःस्थानपो यद्भवनस्थितस्तु।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः शुभेक्षितश्चेत् फलमन्यथा स्यात् ॥"

भाव हानि के अन्य योग :

यो भावोऽघैरस्वराश्युच्चयातै-
र्वा नीचास्तद्विड्भगैर्दृष्टयुक्तः।
सौम्याभ्राटैः स्वामिना नाढ्यदृष्टो
हानिर्गीता तस्य भावस्य तज्ज्ञैः ॥६॥

जो भाव शत्रु राशि, नीच राशिगत अथवा अस्तंगत पाप ग्रहों से युक्त व दृष्ट हो तथा वहां उस भाव के स्वामी या शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो जातकशास्त्र के विद्वानों ने उस स्थान की हानि बताई है।

यद्भावनाथस्त्रिकपादिभिर्युतो
मृतश्च सुप्तः स्थविरः प्रपीडितः ।
भावं न सम्यग् यदि वीक्षते पुमान्
सौख्यं न तद्भावभवं समाप्नुयात् ॥७॥

जिस भाव का स्वामी षष्ठ, अष्टम व द्वादश भावों के अधिपति से युक्त हो, मृत, सुप्त या वृद्ध अवस्था वाला हो, पीड़ित हो तथा अपने स्थान या अपनी राशि को न देखता हो तब मनुष्य को उस स्थान से सम्बन्धित पदार्थों का सुख नहीं मिलता है ।

यद्भावेशोनाशगो मूढवैरि-
नीचर्क्षस्थो नोत्तमैर्दृष्टयुक्तः ।
नाशं ब्रूयात्तस्य भावस्य तादृग्
भावश्चेदप्यस्ति सन्नो तथोग्रः ॥८॥

जिस स्थान का स्वामी अष्टम स्थान में गया हो तथा अस्त, शत्रु राशिगत या नीच राशिगत हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो तथा वह स्थान भी शुभ न हो तो उस भाव सम्बन्धी फल की हानि बतानी चाहिए ।

ऐसी स्थिति में (भावेश के निर्बल होने पर भी) यदि भाव शुभ हो तो फलनाश नहीं होता है । यदि भाव अशुभ (उग्र) हो तो भाव का नाश अवश्य होता है ।

टिप्पणी—**मंत्रेश्वर** का मत इस विषय में ग्रन्थकार से पूर्णतया मिलता है ।

जातक पारिजात तथा **उत्तरकालामृतकार** ने माना है कि भाव के शुभ होने पर भी यदि भावेश अशुभ हो तो अवश्य अशुभ फल ही करेगा—

'तद्भावस्य विनाशनं मुनिगणाः शसंन्ति सौम्यैर्युत,
श्चेत्तत्रापि फलप्रदो न हि तथा तन्वादिभानां क्रमात् ॥

(उत्तरकालामृत)

जातक पारिजात में भी अन्तिम पंक्ति की शब्दावली थोड़ी अलग है लेकिन अर्थ वही है—

'यद्यत्रापि फलप्रदो न हि तथा मूर्त्यादिभानां क्रमात् ।'

पंकास्त्रिकस्थास्तनुपूर्वभावा-
त्कुर्वन्ति ते तन्निलयस्य नाशम् ।
कल्याणखेटा यदि तत्र याता
नातीव कल्याणकरा निरुक्ताः ।।९।।

तन्वादि बारह भावों से षष्ठ, अष्टम, द्वादश में यदि पाप ग्रह स्थित हों तो उस भाव का नाश करते हैं।

विचारणीय स्थान में यदि शुभ ग्रह विराजमान भी हों तो भी वे अधिक शुभ करने में समर्थ नहीं होते।

टिप्पणी—आशय यह है कि जिस भाव का विचार हमें करना हो तो देखना चाहिए कि उस भाव से जो छठे, आठवें तथा बारहवें भाव पड़ते हों, उनमें पाप ग्रह है या नहीं ? यदि वहां पाप ग्रह विद्यमान है तो उस (विचारणीय) भाव का नाश होगा।

यदि जिस भाव का विचार कर रहे हैं, वहां पर शुभ ग्रह हैं तथा वहां षष्ठ, अष्टम, द्वादश भावों में पापग्रह हैं तो वे शुभ ग्रह भी अधिक शुभ फल नहीं कर पाएंगे।

मंत्रेश्वर ने भी ऐसा ही कहा है—

"लग्नादिभावाद्रिपुरन्ध्ररिःफे पापग्रहास्तद्भवनादिनाशम् ।
सौम्यास्तु नात्यन्तफलप्रदाः स्युर्भावादिकानां फलमेवमाहुः ।।"

यो दुष्टयातः खल एष दोषतो
भावस्य वृद्धिं विदधीत शोभनः ।
तत्र स्थितस्तद्भवनक्षयस्ततो-
ऽहितादिगेहोत्थफलक्षयो भवेत् ।।१०।।

जहां से छठे, आठवें व बारहवें भावों में पापग्रह स्थित हैं तो वह विचारणीय भाव के सम्बन्ध में दोषों की अभिवृद्धि करेगा। यदि उक्त स्थानों में शुभ ग्रह विराजमान है तो उस स्थान की दोष हानि करेगा। इसीलिए शत्रु, मृत्यु व व्यय आदि अशुभ भावों की हानि होगी।

टिप्पणी—यदि शुभ स्थानों से (षष्ठ, अष्टम व द्वादश भावों को छोड़कर) शेष स्थानों में पाप ग्रह है तो भाव की हानि करेगा तथा वहां शुभ ग्रह होने पर भाव की वृद्धि होगी।

इसके विपरीत लग्न से षष्ठ, अष्टम और द्वादश भावों से छठे, आठवें व बारहवें भावों में यदि पाप ग्रह हो तो शत्रु आदि की वृद्धि करेगा तथा शुभग्रह हो तो शत्रु, मृत्यु व हानि का नाश करेगा।

यद्भावभर्त्ता सखलस्त्रिकस्थितो
निम्नारिगस्तद्भवनस्य संक्षयः।
भावाद्यदा भावपतिर्गदक्षया-
न्त्यस्थो व्यथां भावभवामवाप्नुयात् ॥११॥

जिस भाव का स्वामी दुष्ट ग्रह से युक्त होकर, नीचगत या शत्रु राशिगत त्रिक् स्थान (षष्ठ, अष्टम, द्वादश) में हो वह अपने भाव का नाश करता है।

जिस भाव का स्वामी, भाव से षष्ठ, अष्टम या द्वादश हो, उस भाव से सम्बन्धित पदार्थों के सम्बन्ध से पीड़ा होती है।

टिप्पणी—उपर्युक्त सिद्धान्त के पीछे यह रहस्य है कि भाव से छठा, आठवां व बारहवां स्थान क्रमशः शत्रु, मृत्यु तथा हानि का है। यदि किसी भाव का स्वामी, उस भाव से उक्त स्थानों में होगा तो निश्चय ही हानिकारक है। कहा गया है—

"भावाद्भावपतिर्व्ययाष्टमृतिगो भावोत्थपीडाकरः।"

पापान्तःस्थे भावपे कारके च
भावे व्यूर्ज्जे युक्तदृष्टेऽरिपापैः।
नान्यैस्तत्कोणाष्टकारके खले त-
द्धानिः स्पष्टं द्वित्रसंवादभावात् ॥१२॥

भाव, भाव का स्वामी तथा भाव कारक यदि तीनों पापग्रहों के बीच में स्थित हों, बलहीन हों, शत्रुग्रहों या पापग्रहों से दृष्ट या युत हों तथा शुभग्रहों तथा मित्रग्रहों से दृष्ट न हों तो हानि होती है।

इसी तरह इन भाव, भावेश या भावकारक से त्रिकोण, चतुर्थ, अष्टम तथा द्वादश स्थानों में पापग्रह हों तो भी भाव की हानि होती है

भावभावपतिकारकग्रहा-
स्तेऽशुभाम्बरगमध्यसंस्थिताः।

शक्तिभिः खलखगैर्युता बलै-
र्वर्जिताः सदयुतेक्षितास्तथा ॥१३॥

तद्व्ययाष्टमतिमित्रमार्गगाः
पामरा यदि तदंशराशिपाः ।
मूढवैरिविजिताधरग्रहा-
भावहानिरिह तद्गृहे स्मृता ॥१४॥

भाव, भाव का स्वामी और भाव का कारक यदि ये तीनों पाप ग्रहों के मध्य में स्थित हों तो उस भाव की हानि समझनी चाहिए यदि बली पापग्रहों से ये युक्त हों, निर्बल हों तथा शुभग्रहों से दृष्ट न हों, इस भाव से चतुर्थ, अष्टम, द्वादश तथा त्रिकोण स्थानों में पापग्रह विद्यमान हों ।

भाव का स्वामी तथा नवांश का स्वामी यदि नीच, पराजित, अस्त, शत्रुराशिगत हों तो विचारणीय भाव की हानि करते हैं ।

टिप्पणी—उपर्युक्त बात का समर्थन **उत्तरकालामृत** में भी किया गया है । भाव, भावेश, भावकारक, नवांशेश यदि उपर्युक्त स्थिति में हों तथा भाव से त्रिकोण में तथा दुष्ट स्थानों में बली पापग्रह हों तो भाव की हानि होती है ।

केवल भावेश से भाव हानि योग :

यद्भावाधिपतिर्नतारिगृहगो वास्तंगतो दुष्टगः
सद्योगेक्षणवर्जितोऽसदरियुग्दृष्टोऽरिनीचांशगः ।
चेत्पापिद्युचरैः पराजयहतो वीतप्रभः कीर्त्तित-
स्तद्भावप्रलयो विलग्नभवनादीनां क्रमात्कोविदैः ॥१५॥

तन्वादि बारह भावों में से जिस भाव का स्वामी नीच राशि में, शत्रु गृह में, अस्त या षष्ठ, अष्टम, द्वादश स्थानों में स्थित, शुभग्रहों की युति या दृष्टि से रहित, पापग्रह से युत और दृष्ट, शत्रु नवांश या नीच नवांश में स्थित, पापग्रहों से पराजित या आहत, कान्तिरहित हो तो उस भाव का विद्वानों ने नाश बताया है ।

टिप्पणी—उत्तरकालामृत के कथन से यह नियम समर्थित है। कहा गया है—

"दुःस्थानानि गतोऽरिनीचगृहगश्चास्तं गतोवापिय-
द्भावेशः शुभयोगदृष्टिरहितः क्रूरारियुक्तेक्षितः।
नीचार्यंशगतः पराजयहतश्चेत्पापिभिर्निद्युति-
स्तद्भावस्य विनाशनं निगदितं लग्नादिभानां क्रमात्॥"

'भावेश दुष्टस्थान, नीच, शत्रुगृहगत, अस्त तथा शुभग्रहों की युति दृष्टि से रहित तथा पापग्रहों से युक्त, नीच या शत्रु नवांशगत, पराजित, आहत, कान्तिहीन हो तो उस भाव का नाश बताया गया है।'

भावेश व भावकारक की स्थिति से भावनाश :

भावस्य यस्याधिपकारकाख्यौ
वीर्य्यैर्विरिक्तौ प्रलयारियातौ।
यद्वान्त्यगौ जन्मभृतां न भावो
ऽयंसम्भवेत्कस्य कथाऽनुभूतौ॥१६॥

जिस भाव का स्वामी तथा कारक ग्रह, स्थानादि षड्बल से रहित होकर षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थानों में गया हो तो सम्बन्धित भाव (के पदार्थों) का मनुष्य को सर्वथा अभाव रहता है, उन वस्तुओं के दर्शन भी असम्भव होते हैं।

आशय यह है कि भावेश या भावकारक इस स्थिति में हों तो निश्चय ही भाव का नाश होता है। ऐसा मनुष्य भाव सम्बन्धी पदार्थों का सुख कदाचित् बिल्कुल नहीं भोग पाता है। विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि उसे उन पदार्थों की जीवन में अनुभूति भी नहीं होती, अर्थात् ऐसा समझकर फलादेश करना चाहिए कि मानो कुण्डली में उक्त भाव का सर्वथा अभाव हो। **जातकादेशमार्गकार** का विचार यही है—

"रिःफारातिमृतिस्थितौ च विबलौ यत्कारकाधीश्वरौ,
भावोऽयं न हि सम्भवेदिह नृणां कस्यानुभूतौ कथा॥"

स्वयं ग्रन्थकार ने अपनी इस धारणा का प्रस्तुतीकरण अपने विशाल ग्रन्थ **ज्योतिस्तत्त्व** में भी किया है—

"रोगावसानप्रलयालयस्थितो मूलत्रिकोणस्वगृहोच्चराशिगः ।
आकाशवासो न हि दोषकारकः संस्तद्विना तत्र गतोऽस्तुदोषकृत् ।।"

यदि भावेश और भावकारक षष्ठ, अष्टम, द्वादश (विचारणीय भाव से) में, मूलत्रिकोण, उच्च या स्वगृही हों तो भाव की वृद्धि होती है। अन्यथा (निर्बल होने पर) भाव की हानि होती है।"

यह 'प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में भावापचय प्रकरण समाप्त हुआ।

---

६ | भावोपचयापचय* प्रकरण

शुभाशुभपञ्चक :—

> मूलत्रिकोणोच्चसुहृत्स्वकीया-
> धीष्टर्क्षमेतच्छुभपञ्चकं स्यात् ।
> समारिनीचाध्यरिभानि चास्तः
> प्रकीर्त्यतेऽदोऽशुभपञ्चकाख्यम् ॥१॥

ग्रह की मूलत्रिकोण राशि, उच्च राशि, मित्र राशि, स्व राशि तथा अधिमित्र राशि ये पांच राशियां शुभपञ्चक होती हैं।

समग्रह की राशि, शत्रु की राशि, नीच राशि, अधिशत्रु की राशि तथा अस्त ये अशुभ पञ्चक हैं। ऐसा विद्वानों ने कहा है।

टिप्पणी--आशय यह है कि शुभ पञ्चक राशियों में यदि कहीं पर ग्रह स्थित है तो शुभ फल देने वाला होता है, भाव की वृद्धि करता है। इसीलिए इनका नाम 'शुभ पञ्चक' है।

अशुभ पञ्चकस्थ ग्रह अशुभ फल देता है। अतः इसका यह सार्थक व यथा नाम तथा गुण नामकरण है।

स्वयं ग्रन्थकार ने **ज्योतिस्तत्त्व** में इस तरह कहा है—

"नीचारिगो भावविनाशकृत्खगः समः समर्क्षे सखिभे त्रिकोणभे।
स्वोच्चे स्वभे भावचयप्रदः फलं दुःस्थेष्वसत्सत्सु विलोममीरितम् ॥"

"नीच व शत्रु राशि में स्थित ग्रह भाव का विनाश करता है, समग्रह की राशि में सम होता है। स्वोच्च, स्वगृह मित्रगृह तथा मूल-त्रिकोण में भाव की वृद्धि करता है तथा पापी ग्रहों के साथ यदि दुष्ट स्थानों में हो तो उलटा फल बताया गया है।"

गर्ग जातक में भी इसी बात को दोहराया गया है—

> **"नीचर्क्षरिपुगेहस्थो ग्रहो भावविनाशकृत्।**
> **उदासीनगृहे मध्यो, मित्रर्क्षस्वत्रिकोणगः ॥**
> **स्वोच्चगश्च ग्रहोऽवश्यं भाववृद्धिकरः स्मृतः।"**

---

* उपचय—वृद्धि, तथा अपचय हानि।

ग्रहों के बलाबल से भाव-फल की मात्रा :

ग्रहस्य सोर्ज्जाबललक्षणानि
प्रोक्तानि तेषां गणनां विधाय।
तदन्तरं विद्धिदधीत शेष
वशेन भावस्य चितिश्च हानिः ॥२॥

सूर्यादि ग्रहों के जो अभी तक भाववृद्धि तथा हानिकारक योग बताए गये हैं, उन्हें गिनकर अलग-अलग रख लेना चाहिए। दोनों योगों में परस्पर जो अन्तर हो उसी के अनुसार भाव की वृद्धि या हानि बतानी चाहिए।

टिप्पणी—उदाहरणार्थ धनभाव का विचार करते समय पाया कि दो योग हानिकारक हैं तथा तीन योग फलकारक हैं। अब योगकारक संख्या अधिक है। अतः धनी जातक होगा। इसके साथ ही योगों तथा योगकारक ग्रहों के बलाबल के अनुसार भी देखना चाहिए कि दो बली हानिकारक योग सम्भवतः तीन कमजोर फलकारक योगों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होते हैं। अतः भाव का विचार करते समय अपने अनुभव तथा जातक की स्थिति तथा देश-काल को दृष्टि में रखकर ही कोई निर्णय करना चाहिए। माना खूब धनी घराने में उत्पन्न बालक कम शुभ योगों के बावजूद भी सामान्य कुलोत्पन्न उत्तम योगों वाले बालकों की अपेक्षा प्रायः धनी होगा।

ग्रह की अति विबलता व अल्पबलता :

लक्षणैर्हि विफलैश्च विनष्टैः
संयुतोऽतिविबलः खग उक्तः।
लक्षणैस्तदितरैः सहितो यः
कथ्यतेऽल्पविबलः स विहंगः ॥३॥

जो ग्रह पहले बताए गये विनष्ट तथा विफल लक्षणों से युक्त होगा उसे अतिविबल समझना चाहिए, अर्थात् वह अधिक अशुभफल प्रद होगा।

इसके विपरीत जो ग्रह अन्यथा लक्षणों से युक्त होगा वह अल्प बली होगा, अतः अशुभ फल की मात्रा कम हो जाएगी।

टिप्पणी—विफल ग्रह का लक्षण संक्षेप में यह है—नीच, शत्रु या अधिशत्रु की राशि में रश्मिरहित, पराजित ग्रह विफल होता है। इसी तरह विनष्ट ग्रह क्रूराक्रान्त, अशुभ ग्रहों से युक्त, पापी ग्रहों से युत या दृष्ट तथा अस्त होता है।

इस प्रकार विचार करते समय ग्रहों के सबल व विबल लक्षणों की सावधानी से गवेषणा करनी चाहिए। यदि किसी ग्रह का एक भी प्रबल-निर्बल लक्षण है तो कई अन्य बलकारक योग होने पर भी वह ग्रह भाव की हानि करेगा। इस विषय में **श्रीपति** का कथन है—

"एक भी प्रबल दोष सारे गुणों को मलिन कर देता है जैसे पंचगव्य को भ्रष्ट करने के लिए मदिरा की एक बूंद ही काफी है।"

श्रीपति (भावानुवाद)

यही कारण है कि ग्रहों के योगों से उत्पन्न फल का बारीकी से निरीक्षण-परीक्षण करने के बाद ही फलादेश करना चाहिए। बुरे व अच्छे योगों का समान मिश्रण भी अशुभ होता है। जैसे शहद व घी की बराबर मात्रा का योग विष हो जाता है। विष भी मात्रा व अनुपान भेद से अमृत का काम करता है। अतः ग्रह के विबल-सबल लक्षणों के योग का निरीक्षण सावधानी से ही करना चाहिए। कहा जाता है कि—

यथा हि योगादमृतायते विषं विषायते मध्वपि सर्पिषा समम्।
तथा विहाय स्वफलानि खेचराः, फलं प्रयच्छन्ति हि योगसम्भवम्॥"

"मिश्रण भेद से जिस तरह शहद व घी अमृत तथा विष दोनों का ही काम करते हैं, इसी तरह ग्रह भी अपने स्वाभाविक फल को छोड़कर योगों के आधार पर फल दिया करते हैं।"

लग्न व लग्नेश का विचार :

होरातदीशौ सबलौ फलानां
तयोः प्रपुष्टि क्षतिमूर्ज्जमुक्तौ।
वदन्ति भावेष्वखिलेष्वितीह
ते भावनाथोर्ज्जवशेन चिन्त्ये॥४॥

लग्न व लग्नेश ये दोनों यदि बलवान् हों तो फलवृद्धि करते हैं तथा निर्बल होने पर फल की हानि करते हैं। इसी तरह सभी भावों व भावेशों के बलाबल का विचार करके फलादेश करना चाहिए।

टिप्पणी—भाव व भावेश की सबलता वास्तव में फल निर्णय में बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है। इसी से वास्तविक फलानुमान हो सकता है। एक स्थान पर ऐसा ही कहा गया है—

"लग्नलग्नाधिपौ स्यातां बलाधिकतरौ यदि।
तत्फलानां प्रवृद्धिः स्यात्-हीनो हानिकरः स्मृतः ।।"

"लग्न व लग्नेश के बलानुपात से ही लग्न की वृद्धि समझनी चाहिए। दोनों के निर्बल होने पर हानि होती है।"

लग्नेश व भावेश के योग का फल :

होरेशो यद्भावगो यद्गृहेश-
युक्तो यच्छेत्तत्फलं प्राणयुक्ते।
भावे तत्पे तेन भावेन सौख्यं
प्रोक्तं प्राज्ञैः प्राणमुक्ते व्यथोक्ता ।।५।।

लग्नेश जिस भाव के स्वामी के साथ, जिस स्थान में स्थित होगा, उसी भाव के फल को देगा। यदि भावेश व भाव बलवान् होंगे तो उस भाव का सुख होगा। निर्बल होने पर दुःख होगा।

टिप्पणी—आशय यह है कि लग्नेश यदि किसी बलवान् भावेश के साथ जिस स्थान में होगा, उस भाव की वृद्धि होगी।

फलदीपिका में कहा गया है—

"लग्नेश्वरो यद्भवनेशयुक्तो यद्भावगस्तस्य फलं ददाति।
भावे तदीशे बलभाजि तेन भावेन सौख्यंव्यसनं बलोने ।।"

'लग्नेश बलवान् भावेश के साथ जिस स्थान में होगा उस भाव की वृद्धि होगी, यदि भावेश अल्पबली होगा तो भाव की किञ्चित् हानि होगी।'

उदाहरण से इसे समझ लें—माना कर्क लग्न का स्वामी चन्द्रमा राज्येश मंगल के साथ दशम में या अन्यत्र कहीं शुभ भाव में स्थित है तो मंगल की बलवत्ता के आधार पर राज्य स्थान की वृद्धि होगी, यदि बलवान् मंगल होगा तो राज्य भाव की अपूर्व वृद्धि होगी और मंगल बलहीन हो तो राज्य भाव की हानि होगी।

भावस्य यस्य बलिना विभुनाऽन्वितोऽङ्गे
यद्गेहगोऽधिफलयुग्भगतः स शस्तम् ।
तन्मन्दिरानुगुणमातनुते विलोमं
वीर्य्योनगेहपयुतोऽल्पफलर्क्षगः सः ॥६॥

लग्न का स्वामी, जिस किसी बलवान् भावेश से युक्त होकर जिस भाव में हो, यदि उसकी रेखाएं (अष्टक वर्ग) अधिक हों तो उस भाव के भावानुभव की वृद्धि करेगा। यदि लग्नेश निर्बल भावेश से से युक्त होगा तथा कम रेखाओं वाला होगा तो विपरीत फल देने वाला होगा।

टिप्पणी—वास्तव में पिछले श्लोक में बताई गई बात को ही यहां पुष्ट किया गया है। ग्रह बल का अनुमान अष्टक वर्ग में प्राप्त रेखाओं से भी लगाया जाता है। आशय केवल भावेश के बली होने से ही है। सात सूर्यादि ग्रहों की अधिष्ठित राशियां तथा लग्न इन आठों को मिलाकर अष्टक वर्ग बनते हैं। अपनी अधिष्ठित राशि से ग्रह जिन स्थानों को बल प्रदान करता है, उसे ग्रन्थों में क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के रेखा-चक्रों में दिखाया हुआ होता है। उनके आधार पर प्रत्येक जातक की जन्म-कुण्डली में बल देने का चिन्ह रेखा से बताया गया है। जहां पर ग्रह बल प्रदान नहीं करता वहां पर शून्य या बिन्दु लिख लेते हैं। किसी-किसी ग्रन्थ में बल प्रदान के लिए बिन्दु तथा विपरीत स्थिति को रेखा से भी प्रतीकित किया गया है। आशय यही है कि यदि बलदान को रेखा से प्रकट करें तो विपरीत स्थिति को बिन्दु से प्रकट करना चाहिए। यदि बल को बिन्दु से प्रकट करना हो तो विपरीत स्थिति को रेखा से प्रकट करेंगे। इस तरह सूर्य कुण्डली व सूर्याष्टक वर्ग, चन्द्र कुण्डली व अष्टक वर्ग आदि क्रम से आठ कुण्डलियां तथा वर्ग बनाकर ग्रहों तथा भावों के बलाबल का अनुमान किया जाता है।

उपर्युक्त श्लोक में बताया गया है—यदि बलवान् भावेश होगा तो वृद्धिकारक होगा, अन्यथा स्थिति में फल भी अन्यथा ही समझना चाहिए। **मंत्रेश्वर** ने भी इसी प्रकार बताया है। केवल इतना भेद है कि लग्नेश बलवान् भावेश से युक्त होगा तो उस भावेश के भाव को बल प्रदान करेगा तथा जहां ये दोनों स्थित होंगे उस भाव को भी पुष्टि प्रदान करेंगे—

"यद्भावप्रभुणायुतो बलवता मुख्यांकगो लग्नप।
स्तद्भावानुभवं शुभं वितनुते यद्भावगस्तस्य च ॥"

'जिस बलवान् भावेश के साथ लग्नेश अधिक रेखाओं (अंक) वाले भाव में होगा तो उस (स्थित) भाव को तथा जिस भाव का स्वामी उसके साथ है, उस भाव की भी वृद्धि करेगा।'

उपर्युक्त नियम का अपवाद :

यद्गृहे भवनपान्वितोऽङ्गप-
स्तस्य वृद्धिरुदिता विचक्षणैः।
पञ्चतेशसहितः पुराधिपो
यन्निकेत उदितस्तदत्ययः ॥७॥

यद्यपि जिस बलवान् भावेश के साथ लग्नेश जहां स्थित होगा, वहां उस भाव की वृद्धि तो होगी लेकिन अष्टमेश के साथ लग्नेश जिस भाव में स्थित होगा, उस भाव की हानि (अत्यय) होगी।

टिप्पणी—यद्यपि विद्वानों ने बताया है कि लग्नेश जिस बलवान् भावेश के साथ होगा, उस भाव की या स्थित भाव की वृद्धि होगी, लेकिन ग्रन्थकार के मतानुसार अष्टमेश बलवान् होकर लग्नेश के साथ जहां बैठेगा, उस भाव की हानि होगी। लेकिन यह बात कदाचित् तीनों दुष्ट भावेशों पर लागू होनी चाहिए। यदि लग्नेश बलवान् हो (चाहे क्रूर ग्रह भी हो) तथा षष्ठेश, अष्टमेश व द्वादशेश से युक्त होकर जिस स्थान में स्थित हो तो उसका नाश यदि नहीं भी हो तो किञ्चिन्मात्र हानि तो अवश्य करेगा ही, ऐसा हमारा विचार है। स्वयं ग्रन्थकार कदाचित् इसे आगामी श्लोकों में अप्रत्यक्ष रूप से पुष्ट कर रहे हैं।

पौराधिपाश्रितगृहस्य शिवं पुरेशो
यस्यालयस्य विभुना सहितश्च तिष्ठेत्
तद्भावजातमखिलं फलमातनोति
दुःस्थान एतदुदितं विपरीतमेव ॥८॥

भावाधिनाथो यदि दुर्बलो जना-
वतीव दोषः कथितः स चेद्बली।

दोषाल्पता यद्गृहगो धनाधिपो-
ऽप्यशोभनस्तद्गृहवृद्धिमादिशेत् ॥९॥

त्रिकेट् स लग्नादितरस्य चेन्नहि
प्राबल्यमस्त्रे सझषे ससिंहभे ।
धीस्थे सुताप्ति सुकृतेक्षिते तु तत्
प्राप्ति लघूदाहरणं वदेदिह ॥१०॥

लग्नेश (बलवान्) जिस भाव में स्थित होगा, उस भाव की वृद्धि करता है, यदि उसके साथ उस स्थान का स्वामी भी स्थित होगा तो निश्चित ही भाववृद्धि होगी। वह सारे शुभ फलों को प्रदान करेगा।

यदि यह स्थिति दुष्ट भावों में होगी तो वहां पर विपरीत फल (हानि) समझनी चाहिए।

यदि विचारणीय भाव का स्वामी विबल हो तो उस भाव सम्बन्धी दोष की अधिकता समझनी चाहिए, यदि वह भावेश बलवान् हो तो दोष की अल्पता समझनी चाहिए। यदि वह भावेश पापग्रह भी हो तो भी भाव की वृद्धि होती है।

यदि पापग्रह लग्नेश होकर षष्ठेश, अष्टमेश या द्वादशेश भी हो तो दुष्ट स्थानों के आधिपत्य के कारण होने वाला उसका कुप्रभाव कम हो जाता है। अर्थात् उसके लग्नेशत्व को ही त्रिकेशत्व की अपेक्षा प्रधान मानना चाहिए। जैसे सिंह या मीन राशि का मंगल पंचम स्थान में होगा तो पंचम स्थान से सम्बन्धित फल (पुत्र प्राप्ति) प्रदान करेगा। यदि ऐसा मंगल शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो उक्त फल की प्राप्ति शीघ्रता से होगी।

टिप्पणी—यहां यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि लग्नेश यदि दुष्ट भावेशों (४-८-१२) से युक्त होगा तथा जहां स्थित होगा दोनों भावों की हानि करेगा। इसे पूर्वोक्त सामान्य नियम का विरोधी नहीं समझना चाहिए। इसका स्पष्टीकरण यह है कि लग्नेश जिस भावेश के साथ जिस भाव में स्थित होगा उस भाव की तथा भावेश के भाव की वृद्धि करेगा। अस्तु, षष्ठेश, अष्टमेश या द्वादशेश के साथ लग्नेश जब युति करेगा तो भाव की वृद्धि, अर्थात् रोग, मृत्यु तथा व्यय की वृद्धि करेगा, अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि से नितान्त हानिप्रद होगा। लेकिन लग्नेश यदि बलवान् होगा तो सम्भवतः इस अशुभ फल में किञ्चिन्मात्र

न्यूनता आ जाए। लग्नेश व भावेश में से जो अधिक वली होगा वह अपने स्वभावानुसार फल देगा। **मंत्रेश्वर** ने भी कहा है—

"दु:स्थाने विपरीतमेतदुदितं भावेश्वरे दुर्बले।
दोषोऽतीव भवेद् बलेन सहिते दोषाल्पता जल्पिता ।।" इति

'दुष्ट स्थानों में लग्नेश व भावेश का योग हानिप्रद होगा। भावेश के कमजोर होने पर अधिक तथा भावेश के वली होने पर कम दोष होगा।'

यदि एक ही ग्रह लग्नेश तथा दुष्ट भवनेश हो तो उसकी दुष्टता में कमी आ जाएगी। **मंत्रेश्वर** ने भी कहा है—

"...दु:स्थानाधिपतिः स चेद्यदि तनोः प्रावल्यमन्यस्य न।" इति

"दु:स्थानाधिपति यदि लग्नेश भी हो तो उसके लग्नेशत्व की प्रधानता रहेगी, दूसरे भावों के आधिपत्य को गौण माना जाता है।"

इसके उदाहरण स्वरूप जो स्थिति वताई गई है वह मेष जन्म लग्न में सम्भव है।
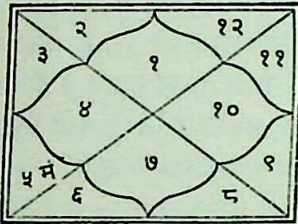
यहां पर मंगल लग्नेश तथा अष्टमेश दोनों है तथा वह सुत स्थान में है। अब लग्नेश के नाते वह शुभ फलकारक है तथा अष्टमेश होने के कारण अशुभ फल कारक है। अब मंगल के फल की प्रधानता लग्नेश होने के कारण शुभ मानी जाएगी। अतः ऐसी स्थिति में मंगल पुत्र प्रदाता होगा।

उपाधि भेद से ग्रहों की शुभाशुभता :

नो भावघ्नोऽघः स्वगेहोच्चयातो
भावाधीशः पामरोऽपि शुभः स्यात्।
स्वर्क्षोच्चस्थो दुष्टगोऽसन्न शस्तः
सन्तः सर्वे मूढनीचारिभोनाः ।।११।।

यदि पापग्रह अपनी राशि में या अपनी उच्च राशि में स्थित हो तो वह भाव का नाशक (भावघ्न) नहीं होता। पापग्रह भी भावाधिपति के रूप में शुभ होता है।

पाप ग्रह उच्च राशिगत या स्वराशिगत हो तथा षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थानों में स्थित हो तो अशुभ फल कारक हो जाता है।

यदि सूर्यादि ग्रह अपने नीच, शत्रु राशि या अस्तंगत नहीं हों तो शुभ माने जाते हैं।

टिप्पणी—उपर्युक्त मत से **मंत्रेश्वर** भी सहमत हैं। उनके कथन का अर्थ ग्रन्थकार के अर्थ से भिन्न नहीं है, अतः उसे हम यहां उद्धृत नहीं कर रहे हैं। लेकिन दोनों कथनों में एक विरोध दिखता है। श्लोक की पहली पंक्ति में कहा गया है कि उच्च या स्वराशिगत पाप ग्रह भाव-नाशक नहीं होता है। इसके विपरीत तीसरी पंक्ति में कहा गया है कि स्वराशि गत या स्वोच्च राशिगत पापग्रह यदि त्रिक स्थानों (६-८-१२) में स्थित हो तो अशुभ होता है।

उपर्युक्त दोनों कथन परस्पर विरोधी लगते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि 'सामान्य कथन से विशेष कथन बलवान् होता है। पहले चरण में सामान्य नियम का उल्लेख है जबकि तीसरे चरण में विशेष नियम का उल्लेख है। अतः तात्पर्य यह है कि पाप ग्रह स्वोच्च राशिगत या स्वराशिगत हो तो सामान्यतः शुभ होता है, लेकिन वही पाप ग्रह यदि उच्चगत या स्वराशिगत होकर त्रिक स्थानों में स्थित हो तो वह अशुभ होता है।

स्वयं ग्रन्थकार ने इस विरोध को पहचाना था तथा समाधान किया था, जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं—

"नन्वत्र प्रथमपादे स्वभोच्चस्थः पापग्रहो नो भावहोक्तः। तृतीय पादे तु दुस्थः पापग्रह स्वभोच्चगोऽपि भावहोक्तः, इत्युभयोर्पादयोर्मिथो विरोधो दृश्यते। परन्त्विह प्रथमपादे सामान्यशास्त्रं तृतीयपादे विशेष शास्त्रं प्रोक्तं 'सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान्भवेदि'ति न्यायेन दुष्टगतस्य पापस्याशुभत्वं सर्वसम्मतं विशेषत्वात्।" इति

"प्रथम व तृतीय पाद के कथनों में परस्पर विरोध दिखता है, लेकिन प्रथम चरण में सामान्य शास्त्र का संकेत है तथा तीसरे चरण में विशेष शास्त्र का उल्लेख है। अतः विशेष स्थिति में दुष्ट स्थानगत पाप

ग्रह स्वोच्चगत या स्वराशिगत भी हो तो भी दुष्ट होता है, ऐसा सभी को मान्य है।

दुष्टस्थानगत ग्रह की स्थिति भेद से शुभाशुभता :

विहंगमो यस्त्रिकगेहगोऽपि वा
यदाऽधरारातिलवोपगो यदि।
पापः स मित्रोच्चभभागसंयुतो
वा सौम्यदृष्टो यदि सत्फलप्रदः॥१२॥

त्रिकस्थानों (६-८-१२) में यदि पापग्रह हो तथा अपने नीच नवांश या शत्रु नवांश में हो तो अशुभ फल देगा।

यदि पाप ग्रह उक्त स्थानों में अपने मित्र की राशि या नवांश में अथवा स्वोच्च राशि या नवांश में स्थित होगा तथा उसे शुभ ग्रह भी देखते होंगे तो वह शुभ फल देने वाला होगा।

टिप्पणी—दुष्ट स्थानों में स्थित पाप ग्रह यदि स्वोच्च नवांश या मित्र नवांश अथवा मित्र राशि या स्वराशि में हो तो उसके अशुभ फल की शान्ति हो जाती है। **वैद्यनाथ** ने भी कहा है—

"दुष्टस्थितो वापि सदा नभोगः, पापोऽरि नीचांशक संयुतो यः।
स्वतुंगमित्रांशकराशियुक्तः शुभेक्षितो वा यदि शोभनः स्यात्॥"

'यदि पाप ग्रह दुष्ट स्थानों में शत्रु या नीच नवांश में स्थित हो अथवा शत्रु ग्रहों से युक्त हो तो पापी हो जाता है।

स्वोच्च या मित्र नवांश अथवा उच्च या मित्र राशि में पाप ग्रह हो अथवा वहां स्थित उसे शुभ ग्रह देखते हों तो वह 'शुभ' हो जाता है।

त्रिकोणेश व केन्द्रेश की बलशालिता :

केन्द्रत्रिकोणालयपाः शुभप्रदाः
सोग्रा मिथोऽन्त्यार्थगता न शोभनाः।
पौरप्रभुः सद्युतवीक्षितो बली
यद्भेऽस्ति तत्पुष्टिरनीचशत्रुगः॥१३॥

केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी सौख्यकारक होते हैं। यदि ये पाप ग्रहों से युक्त होकर एक-दूसरे से दूसरे तथा बारहवें स्थानों में हों तो अशुभ हो जाते हैं।

लग्नेश जिस भाव में स्थित हो, यदि वह नीच या शत्रु राशि में नहीं है तथा शुभग्रहों से युत वा दृष्ट है तो उस स्थान की पुष्टि करेगा।

टिप्पणी—सामान्यत: केन्द्राधिप तथा त्रिकोणाधिप ग्रह शुभ फलकारक माने गए हैं, लेकिन वे यदि द्विर्द्वादश योग बनाते हों तथा पापग्रहों से युत वा दृष्ट हों तो उनका शुभ फलकारकत्व नष्ट हो जाता है। कहा गया है—

"केन्द्रत्रिकोणपतयोऽधिकसत्सुवोऽप्यन्योन्यं धनव्ययगताः सखलाः न शस्ताः।" इति

"केन्द्रेश व त्रिकोणेश शुभ होते हुए भी यदि द्वितीय द्वादश हों तथा पापी ग्रहों से युक्त हों तो अच्छे नहीं होते (न शस्ताः)।"

लग्नेश यद्यपि फल निर्णय में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है लेकिन शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति से उसकी फलदता वृद्धि पाती है। अन्यथा नीचादि राशिगत तथा पाप दृष्ट होने पर लग्नेश भी विपरीत फल का कारक होता है। **वैद्यनाथ** ने कहा है—

"लग्नेशः शुभखेटवीक्षितयुतो यद्भावयातो बली।
तद्भावस्य शुभं करोति विपुलं नीचारिगस्त्वन्यथा॥" इति

"लग्नेश बली तथा शुभ दृष्ट होकर जिस स्थान में होगा, उस भाव का बहुत शुभ करेगा। इसके विपरीत नीचराशि में या शत्रुराशि में होगा तो विपरीत फल करने वाला होगा।"

सप्तवर्गों से भावों की शुभाशुभता :

ये ये भावा भव्यवर्गाश्रिताः स्यु
स्ते निःशेषाः सौम्यतां प्राप्नुवन्ति।
नेष्टा ज्ञेयास्तेऽघवर्गाश्रिता ये
ते मिश्राख्या मिश्रवर्गाश्रिताः स्युः॥१४॥

जो तन्वादि भाव शुभ ग्रहों के सप्तवर्ग या दस वर्गों से युक्त होंगे, वे सब शुभता को प्राप्त कर लेते हैं।

यदि भावों में पाप वर्गों की अधिकता है तो भाव नेष्ट (अशुभ) हो जाते हैं।

जिन भावों में समान संख्यक शुभ व अशुभ वर्ग होंगे, उन्हें 'मिश्र', मिले-जुले या सम समझना चाहिए।

टिप्पणी—गृह, होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश ये सप्तवर्ग हैं तथा इनमें षोडशांश दशमांश तथा षष्ट्यंश परिगणित करने पर दशवर्ग कहलाते हैं। इनका साधन जन्म-पत्र निर्माण में आवश्यक है। उपर्युक्त कथन का आशय है कि जिस स्थान में भाव स्पष्ट के राश्यादिकों के आधार इन दस वर्गों की पाप राशियां तथा शुभ राशियां गिनकर देखना चाहिए कि किन वर्गों की प्रधानता है। यदि पाप ग्रहों की राशियों में अधिक वर्ग होंगे तो 'भाव' अशुभ होगा तथा शुभ ग्रहों की राशियों में ज्यादा वर्ग पड़े होंगे तो स्थान शुभ होगा। यदि दोनों प्रकार के वर्गों की संख्या बराबर हो तो उस भाव को मिश्र (सम) समझना चाहिए। यह बात सभी बारह भावों के विषय में समान है।

भावों के केन्द्र व त्रिकोण स्थानों से भाव पुष्टि :

यद्भावेभ्यो व्यंगकेन्द्रत्रिकोणे
सत्स्वाम्याक्षे पंकयोगेक्षणोने।
तद्भावानां पुष्टिरुक्ताऽन्यथाचे
द्धानिर्मिश्रं स्यात्फलं मिश्रतोऽत्र ।।१५।।

जिन स्थानों से केन्द्र स्थानों (४-७-१०) तथा त्रिकोण स्थानों (५-९) में शुभ ग्रह हों तथा वे शुभ स्थानों के स्वामी हों तथा पाप ग्रहों की वहां दृष्टि या युति न हो तो भाव की पुष्टि होती है।

यदि उपर्युक्त स्थिति के विपरीत स्थिति हो, अर्थात् इन स्थानों में पाप ग्रहों की स्थिति, दृष्टि या युति हो अथवा दुष्ट स्थानों के स्वामी ग्रह इनमें स्थित हों तो भाव की हानि समझनी चाहिए।

मिली-जुली स्थिति में फल भी शुभाशुभ रूप मिश्रित ही होता है।

टिप्पणी—**वैद्यनाथ** भी इस कथन से सहमत हैं। अतः फलादेश के समय जिस भाव का विचार कर रहे हों, उस भाव से केन्द्र व त्रिकोण स्थानों की भी स्थिति को देख लेना चाहिए।

भावेश की राशि के स्वामी से भाव-बल विचार :

भावाधिपाधिष्ठितराशिवल्लभे
दुःस्थानयाते यदि दुर्बलं फलम् ।
वाच्यं स्वकीयोच्चभमित्रराशिगे
तस्मिंस्तदा भावचितिं बुधा विदुः ॥१६॥

विचारणीय भाव का स्वामी जिस स्थान में हो, उस स्थान की राशि का स्वामी यदि दुष्ट स्थानों में स्थित हो तो विचारणीय भाव को निर्बल करता है। यदि उक्त भावेश द्वारा अधिष्ठित राशि का स्वामी अपनी उच्चराशि या मित्रराशि में हो तो विचारणीय भाव को पुष्टि प्रदान करता है, ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं।

टिप्पणी—जिस भाव का विचार कर रहे हों, उस भाव का स्वामी जिस स्थान में स्थित हो, वहां की राशि के स्वामी के बलाबल से भी विचारणीय भाव की पुष्टि या हानि होती है। यदि वह राशीश स्वोच्च वा मित्रराशि में हो तो उक्त भाव को बल प्रदान करेगा। यदि उक्त राशीश दुष्ट स्थानों में हो तो भाव को कमजोर करेगा। **वैद्यनाथ** ने कहा है—

"भावेशाक्रान्तराशीशे दुःस्थे भावस्य दुर्बलम् ।
स्वोच्चमित्रस्वराशिस्थे भावपुष्टिं वदेद् बुधः ॥"

"भावेश की अधिष्ठित राशि का स्वामी यदि दुष्ट स्थान में हो तो भाव को दुर्बल करेगा तथा स्वोच्च, मित्र या स्वराशि में होने पर भाव पुष्टि करेगा।"

इस योग को ग्रन्थकार ने **भावेशाक्रान्तराशीश** कहा है। इस विषय में नम्र निवेदन यह है कि सामान्यतः यह बात ठीक प्रतीत होती है, लेकिन इसके अपवाद भी हैं। बारहवें भाव में यदि शुक्र है तथा शुक्र की राशि में जो ग्रह है, उस ग्रह की राशि जिस भाव में है तो उपर्युक्त नियम से उस भाव की हानि होनी चाहिए। एतदर्थ इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया की जन्म-कुण्डली यहां प्रस्तुत की जा रही है।

चतुर्थ स्थान जनता, लोकप्रियता, वाहन, सम्पत्ति आदि का है। उसका स्वामी सूर्य लग्न में उच्चस्थ चन्द्रमा के साथ बली है। सूर्य द्वारा अधिष्ठित राशि का स्वामी शुक्र दुष्ट स्थानों (६-८-१२) में से एक
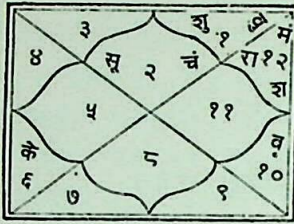
बारहवें स्थान में स्थित है, अतः उपर्युक्त नियम के अनुसार चतुर्थ भाव की हानि होनी चाहिए। लेकिन यह बात विश्वविदित है कि महारानी ने लगभग तीन दशकों तक राज्य किया तथा प्रचुर धन सम्पत्ति की स्वामिनी रहीं।

इसका कारण कदाचित् यह है कि शुक्र बारहवें स्थान में शुभ माना गया है। यदि वह शनि के नवांश में न हो तभी वह लाभकारक होता है। यद्यपि **भावार्थ रत्नाकर** में शनि की राशि या नवांश में होने या न होने की कोई शर्त नहीं है, लेकिन **उत्तरकालामृत** में यह शर्त लगा दी गई है—

"...शुक्रो द्वादश संस्थितोऽपि शुभदो मन्दांश राशिं विना।" इति

"यह सब कहने का हमारा तात्पर्य यह है कि सामान्य नियम पर विचार करते समय इस तरह विशेष नियमों या अपवादों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

भावात्सन्तः केन्द्रकोणे सवीर्य्या-
स्त्र्यायारिस्थाः पावका भावपस्य।
मित्राणि स्युर्भावसिद्धिप्रदाश्चेद
व्यत्यासस्थास्ते न भावस्य सिद्धिः ॥१७॥

जिस स्थान का विचार कर रहे हों, उस स्थान से केन्द्र स्थानों व त्रिकोण स्थानों में यदि शुभग्रहों की स्थिति हो, तृतीय, षष्ठ व एकादश स्थान में पापग्रह हों, और भावेश के मित्र हों तो भाव के फल की सिद्धि करते हैं।"

यदि केन्द्र व त्रिकोण स्थानों में पापग्रह हो तथा (३-६-११) भावों में भावेश के सम या शत्रुग्रह हों तो विपरीत फल समझना चाहिए।

टिप्पणी—पीछे वताया गया था कि जिस भाव का विचार करना हो, उसे ही लग्न मानकर, उसके अनुसार केन्द्रादि भावों का समायोजन कर लेना चाहिए। तब भावों में स्थित ग्रहों के आधार पर उक्त भाव का फल समझना चाहिए। यहां भी उसी नियम की स्वीकृति है। जिस भाव का विचार कर रहे हों उस भाव से (४-५-७-९-१०) भावों में शुभग्रह हों तथा (३-६-११) भावों में पापग्रह भावेश के मित्र हों तो भाव की वृद्धि होगी। **फलदीपिका** में भी कहा गया है—

"पापाभावगृहात्त्रिशत्रुभवगाः केन्द्रत्रिकोणे शुभाः,
वीर्याढ्या खलु भावनाथसुहृदो भावस्य सिद्धिप्रदाः ॥"

"तीसरे, छठे व ग्यारहवें भाव में पापग्रह हों, केन्द्र व त्रिकोण में शुभ ग्रह हों तथा भावेश के मित्र हों तो भाव की सिद्धि करते हैं।"

बन्धुत्रिकोणास्तवसूदयोपगा
यद्भावतोऽघाः शुभदा यदाऽरिगाः।
कुर्य्युस्तदा भावविपत्तिमन्यगा-
स्तेस्युश्चिर्तिं तद्भवनस्य सर्वदा ॥१८॥

जिस भाव का विचार करना अभीष्ट हो, उस भाव से (२-४-५-७-९) भावों तथा विचारणीय भाव में यदि पापग्रह स्थित हों तथा षष्ठ स्थान में शुभग्रह हों तो उस स्थान की हानि करते हैं।

यदि इसके विपरीत स्थिति हो तो भाव की वृद्धि करते हैं। अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, नवम में शुभ ग्रह हों तथा षष्ठ स्थान में पाप ग्रह हों तो भाव की वृद्धि करेंगे।

स्वक्षेत्री पापग्रह का शुभत्व :

स्वराशिगः पामरखेचरोऽपि
भावस्य वृद्धिं प्रकरोत्यलं सः।
नीचर्क्षयातो रिपुराशिगोऽपि
करोत्यवश्यं भवनस्य नाशम् ॥१९॥

अपनी राशि में स्थित पापग्रह भी भाव की खूब वृद्धि करता है।

यदि पापग्रह नीच, शत्रुराशि में स्थित हो तो भाव की हानि अवश्यंभावी है।

टिप्पणी—यह सामान्य नियम है कि पापग्रह शत्रुक्षेत्री, नीच, अधिशत्रु की राशि में स्थित, अस्त व पराजित हो तो अवश्य ही भाव की हानि करेगा। इसके विपरीत स्वक्षेत्री पापग्रह जहां स्थित होगा, उस भाव की हानि करेगा। स्वयं ग्रन्थकार इस आशय को पीछे अनेकत्र प्रकट कर चुके हैं।

यद्युच्चगोऽप्युत्तमखेचरस्त्रिका-
धिपो विदध्याद्भवनस्य संक्षयम्।
भावानुकूल्यं विदधीत पावकः
सुस्थाननाथो यदि तुंगमाश्रितः ॥२०॥

यदि शुभग्रह अपनी उच्चराशि में स्थित होकर भी त्रिक स्थानों (६-८-१२) के अधिपति होंगे तो भाव की हानि करेंगे। इसके विपरीत पापग्रह उच्चगत होकर शुभस्थानों के अधिपति बनकर बैठे होंगे तो भाव की वृद्धि करेंगे।

टिप्पणी—त्रिकेश होने से शुभग्रहों की शुभता का क्षय होता है। तथा जहां भी ये स्थित होते हैं, वहीं पर हानि करते हैं, चाहे उच्चस्थ ही क्यों न हों।

इसके विपरीत पापग्रह शुभस्थानेश होकर जहां होंगे वहां वृद्धि ही करेंगे। शुभग्रह यदि शुभस्थानेश हों तो मणिकांचन योग होगा ही।

बलवान् त्रिकेश की शुभता :

सोर्ज्जे त्रिकेशे त्रिकभावमाश्रिते
तद्भावपुष्टिं कथयन्ति सूरयः।
यत्रायुरीशो विबलः सतत्क्षयं
करोतु शस्तं सखिसद्मगो यदि ॥२१॥

यदि षष्ठेश, अष्टमेश या द्वादशेश होकर कोई ग्रह बलवान् हो तथा इनमें से किसी एक भाव में स्थित हो तो विद्वानों ने उसे भावपोषक बताया है।

जिस स्थान में बलहीन अष्टमेश हो, उस भाव का नाश करता है। यदि अष्टमेश मित्र राशि में हो तो उस भाव के सम्बन्ध से शुभ फल करता है।

टिप्पणी—बलवान् त्रिकेश यदि त्रिकस्थानों में ही कहीं हो तो शुभफल कारक होता है। इसके विपरीत अष्टमेश कमजोर होकर जहां स्थित होगा, उस भाव का नाश करेगा। **वैद्यनाथ** ने भी कहा है—

"दुःस्थे दुष्टगृहाधिपे बलयुते तद्भावपुष्टिं वदे-
दायुस्थानपतौ तु यत्र विबले तद्भावनाशं तथा ।।"

"दुष्टस्थानाधिप बलवान् होकर यदि दुष्ट स्थानों में ही विद्यमान हो तो शुभ फल कारक होता है।

आयु-स्थान का स्वामी बलहीन होकर जहां स्थित हो वहां का नाश करता है।

भावेश व कारक के अनुसार भाव की अनुभूति :

यद्भावकारकाधीशौ दुःस्थौ तंगादिवेश्मसु ।
स सम्भवेदविकलोऽनुभूतिर्नास्य जन्मिनाम् ।।२२।।
निम्नाद्याश्रयतो व्यूजौं यद्भावाधिपकारकौ ।
सद्भावस्थौ स विकलोऽप्यस्यानुभूतिरंगिनाम् ।।२३।।

जिस स्थान का स्वामी तथा कारकग्रह दोनों अपनी उच्चराशि में स्थित होकर त्रिक् (६-८-१२) स्थानों में स्थित हों तो उस भाव का फलानुभव प्राणियों को नहीं होता है।

यदि किसी स्थान का स्वामी और कारक ग्रह बलहीन, अस्त तथा नीचादि राशिगत होकर भी शुभ स्थान में विद्यमान हों तो वह भाव विकल होता है, लेकिन उस भाव का फलानुभव प्राणियों को होता है।

टिप्पणी—दुष्ट भावों में स्थित ग्रह अन्यथा बलवान् होते हुए भी स्थान की दुष्टता से अशुभफल कारक हो जाता है। इसके विपरीत अन्यथा निर्बलग्रह सुस्थानगत होकर फलदायी हो जाता है। **जातकादेशमार्ग** में कहा गया है—

"स्वोच्चादीष्टगृहेषु कारकपती रन्ध्राद्यनिष्टस्थितौ
यद्भावस्य स सम्भवेदविकलो नास्यानुभूतिर्नृणाम् ।।"

"कारक व भावेश यदि उच्चादिगत होकर अनिष्ट भावों में हों तो भाव की अविकलता होने पर भी प्राणियों को उसका फल नहीं मिलता है।"

इसके विपरीत बलहीन भावेश व कारक सुस्थान में हों तो भाव के फल को देते हैं।

पिण्ड से भाववृद्धि विचार :

शैलाशाष्टाम्भोधिदिग्बाणशैले-
भांकाक्षेशेना गुणा मेषराशेः।
स्यूराशीनां भास्कराद्बाणबाणे-
भाक्षाशागाक्षा गुणाः स्युः खगानाम् ॥२४॥

पिण्ड बनाने के लिए इन गुणकों को ध्यान में रखना चाहिए।

मेष-७, वृष-१०, मिथुन-८, कर्क-४, सिंह-१०, कन्या-५, तुला-७, वृश्चिक-८, धनु-६, मकर-५, कुम्भ-११, मीन-१२।

सूर्यादि ग्रहों के गुणक इस प्रकार हैं—

सूर्य-५, चन्द्र-५, मंगल-८, बुध-५, गुरु-१०, शुक्र-७, शनि-५।

भग्रहोक्तगुणैर्हत्वाऽङ्गभावेशौ पृथक् स्थितौ।
तदैक्यं गुणवृन्दं तद्भमिष्टं भावलाभकः ॥२५॥

जिस भाव का विचार करना हो, उस भाव में स्थित राशि के स्वामी तथा लग्नेश के सम्बन्ध से विचार किया जाता है।

लग्नेश व तदाक्रान्त राशि के गुणक योग से लग्नेश स्पष्ट राश्यादि को गुणा करने से 'लग्नेश पिण्ड' होता है।

भावेश व तदाक्रान्त राशि के गुणक योग के भावेश के स्पष्ट राश्यादि को गुणा करने से 'भावेश पिण्ड' होता है।

इन दोनों पिण्डों का योग कर १२ का भाग देकर, शेष की कला बनाकर ८०० का भाग दें। लब्ध गत नक्षत्र तथा शेष वर्तमान नक्षत्र के कलादि होते हैं। कलादि को २०० से भाग देकर, लब्ध में एक जोड़कर वर्तमान नक्षत्र का चरण ज्ञात करें।

यदि उक्त नक्षत्र 'वैनाशिक' नक्षत्र न हो तथा शेष राश्यादि अष्टम राश्यादि रहित हों तो भाव की वृद्धि समझनी चाहिए।

टिप्पणी—उपर्युक्त विषय को कल्पित उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

जन्म के समय मेष लग्न है। लग्नेश भौम का गुणांक ८ है। मंगल स्वयं मीन राशि में स्थित है, और मीन राशि का गुणांक १२ है। दोनों का योग २० है। यह योगफल हमारी क्रिया में उपयोगी है।

अब लग्नेश भौम के स्पष्ट राश्यादि (११/२७/५३/६) हैं, इन्हें २० से गुणा करने पर लग्नेश पिण्ड (२३८/१७/४३/००) बनेगा।

अब पंचम भाव का विचार करना यदि अभीष्ट है तो पंचमेश सूर्य का गुणांक ५ है तथा सूर्य मेष राशि में स्थित है, जिसका गुणांक ७ है। दोनों का योग ७+५=१२ है।

अब पंचमेश सूर्य के स्पष्ट राश्यादि (००/१७/४३/३०)×१२ =(७/२/४२/००) भावेश पिण्ड हुआ।

इसी तरह जिस भाव का विचार करना हो उसके स्वामी तथा स्वामी द्वारा अधिष्टित राशि के गुणांकों के योग से भावेश स्पष्ट को गुणा कर 'भावेश पिण्ड' प्राप्त कर लेना चाहिए।

अब उदाहरणानुसार हमें पांचवें भाव का विचार करना है। पंचमेश पिण्ड (७/२/४२/००)+लग्नेश पिण्ड (२३८/१७/४३/००)= (२४५/२०/२५/००) हुआ। इसे १२ से भाग दिया तो लब्ध २० को छोड़ दिया तथा शेष (५/२०/२५/००) की कलाएं बना लीं। १०२२५ कलाओं को ८०० से भाग दिया तो लब्ध १२ गत नक्षत्र हुआ तथा शेष ६२५ को २०० से भाग देकर लब्धि ३ में १ जोड़ा तो ४ हुआ। अब १३वें वर्तमान नक्षत्र का चौथा चरण उस पंचम भाव में वर्तमान हुआ। अश्विनी से गिनने पर १३वां नक्षत्र हस्त है।

यदि उक्त हस्त नक्षत्र 'वैनाशिक' होगा तो भाव का नाश होगा, अन्यथा वृद्धि समझनी चाहिए।

वैनाशिक नक्षत्र जन्म नक्षत्र से बाईसवां नक्षत्र होता है। यदि जन्म नक्षत्र मृगशिरा है तो हस्त मृगशिरा से नवां है, अतः वैनाशिक न होने के कारण शुभ है। वैनाशिक नक्षत्र के विषय में **काल प्रकाशिका** में कहा गया है—

"द्वाविंशं जन्मनक्षत्राद् वैनाशिकमिति स्मृतम्।
विनाशं कुरुते यस्मात् तस्माद्वैनाशिकं भवेत्॥" इति

"जन्म नक्षत्र से बाईसवां नक्षत्र वैनाशिक होता है। भाव का नाश करने के कारण इसे वैनाशिक कहते हैं।"

वास्तव में उपर्युक्त गणित क्रिया से आगत नक्षत्र उस भाव का जन्म नक्षत्र समझना चाहिए। इसी नक्षत्र के अनुसार अभीष्ट भाव की जन्म राशि निकाल लेनी चाहिए।

भाव की दुर्लभता :

गुणपिण्डोऽष्टमर्क्षादौ स्थितो वैनाशिके तथा।
यस्य यद्भावजन्मास्य तद्भावाभाव ईरितः ॥२६॥

जिस भाव की स्थिति (उत्पत्ति) अष्टम राशि, अष्टम नवांश या वैनाशिक नक्षत्र में होती है वह भाव प्राणी को दुर्लभ होता है। आशय यह है कि उस से सम्बन्धित पदार्थ मनुष्य को प्राप्त नहीं होते। अर्थात् गुण पिण्ड की स्थिति अष्टम राश्यादि में नहीं होनी चाहिए।

टिप्पणी—पिछले श्लोक की टिप्पणी में भावेश पिण्ड व लग्नेश पिण्ड के साधन की विधि बताई थी। उस प्रक्रिया में भावेश पिण्ड व लग्नेश पिण्ड के योग को 'गुणपिण्ड' कहते हैं।

यदि इस गुण पिण्ड की स्थिति अष्टम राशि या अष्टम नवांश में या वैनाशिक नक्षत्र में हो तो भाव का नाश हो जाता है। पिछले कल्पित उदाहरण में पंचम भावेश पिण्ड तथा लग्नेश पिण्ड का योग (२४५/४/२४/४) था। इसमें राश्यंश कला-विकलाएं यदि भाव राशि से आठवीं राशि अर्थात् मीन राशि में पड़ती होंगी तो भाव का नाश करेगा। २४५ राशि संख्या को १२ से भाग देने पर ५ शेष बचा, अतः कन्या राशि उससे अष्टम नहीं है। इसी तरह नवांश चक्र देखा तो दूसरा नवांश कन्या राशि में कुम्भ का है, अतः अष्टम नहीं है।

इसी प्रकार वैनाशिक नक्षत्र का भी विचार कर लेना चाहिए। बाईसवां नक्षत्र वैनाशिक संज्ञक होता है। इसके विषय में विशेष विचार करने के लिए ८८ वां नवांश भी विचारित होता है। जन्म कालीन स्पष्ट चन्द्रमा की राश्यादियों में ८८ नवांश के मान को जोड़ लेना चाहिए। एक नवांश का मान ३ अंश २० कला होता है। ३/२०×८८ =२९३/२० की राशियां बनाने पर ९/२३/२० राश्यादि होते हैं। इस राश्यादि को जन्म कालीन चन्द्रमा में जोड़ देने पर ८८वें नवांश का अन्त ज्ञात हो जाएगा। इसमें से ३/२० अंशादिक घटा देने से उक्त नवांश का प्रारम्भ जाना जा सकेगा। यदि भाव की उत्पत्ति इस

अट्ठासीवें नवांश में होगी तो भाव का नाश समझना चाहिए। अन्य अंश शुभ होते हैं।

इसके अपवाद स्वरूप कुछ लोग नवांश का विचार न कर सारे नक्षत्र को ही नाशक मानते हैं। **काल विधान** में यही बताया गया है—

वैनाशिकाख्यनक्षत्रेऽप्यष्टाशीतितमोंऽशकः ।
शिष्टांशाः शुभदाः सर्वे केचिदृक्षविवर्जितम् ।।"

"वैनाशिक नक्षत्र का अट्ठासीवां नवांश अशुभ होता है तथा शेष नवांश शुभ होते हैं, किन्तु किसी के मत से सारा नक्षत्र ही वर्जित है।"

गण्डान्तादि अनिष्ट दोष :

गण्डान्तःक्ष्वेडनाडी स्थिरकरणमथो विष्टिसंहारतारा
रिक्तालाटार्गलोष्णानि च दुरितलवा वैधृतं सार्पशीर्षम्
रिःफारातिस्थितत्वं त्रिकविभुदुरितेक्षायुती धूमपूर्वं
प्रोक्ताः पृष्ठोदयाधोमुखखलभलवाम्बुक्षया इत्यनिष्टाः ।।२७।।

नक्षत्र, तिथि तथा लग्न गण्डान्त, नक्षत्र विषघटी, स्थिरकरण, भद्रा, संहार नक्षत्र, रिक्ता तिथि (महापात) व्यतिपात योग, एकार्गल, उष्ण, दुरितांश, वैधृति, सार्पशीर्ष, त्रिक स्थानों में ग्रह, त्रिकेश व पापी ग्रहों की दृष्टि व युति, धूमादि अप्रकाश ग्रह, पृष्ठोदय राशि, अधोमुख नक्षत्र व राशि, पापग्रहों की राशि तथा नवांश और जलक्षय काल ये सब अनिष्ट होते हैं, अर्थात् इन दोषों में जिस भाव की उत्पत्ति हो उसका फल अशुभ होता है।

टिप्पणी—यहां पर अनेक विषयों का समाहार ग्रन्थकार ने एक ही स्थान पर कर दिया है, अतः हम क्रमशः इन्हें स्पष्ट करेंगे—

(i) **गण्डान्त** तीन प्रकार का होता है—तिथिगण्ड, लग्नगण्ड व नक्षत्र गण्ड। पूर्णा तिथियों के अन्त की सात घड़ियां और नन्दा तिथियों की आदि की दो घड़ियां गण्डान्त होती हैं। यह तिथिगण्ड प्रायः यात्रा, विवाहादि व जन्म में त्याज्य माना जाता है। भाव की उत्पत्ति यदि इस तिथिगण्ड में हो तो अनिष्ट होता है। हमारे विचार से तिथिगण्ड का विचार तो मनुष्य जन्म में भी गौण है, अतः भाव विचार के प्रसंग में इस फेर में नहीं पड़ना चाहिए।

मीन लग्न के अन्त की आधी घड़ी और मेष के आरम्भ की आधी घड़ी, कर्क लग्न के अन्त की आधी व सिंह लग्न के आरम्भ की आधी घड़ी, वृश्चिक लग्न के अन्त की आधी घड़ी तथा धनु लग्न के आरम्भ की आधी घड़ी **'लग्न गण्डान्त'** कहलाती हैं।

रेवती, श्लेषा और ज्येष्ठा के अन्त की दो घड़ी तथा अश्विनी, मघा और मूल के आरम्भ की दो घड़ी **'नक्षत्र गण्डान्त'** कहलाती हैं। वैसे ये छह नक्षत्र सारे ही 'गण्ड' यानि अशुभ होते हैं, लेकिन गण्डान्त में जन्म लेने पर विशेष अशुभ होता है। इसमें भी विशेष रूप से **'अभुक्त मूल'** का विचार किया जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्र की अन्तिम चार घड़ियां तथा मूल की आरम्भ की चार घड़ियां अभुक्त होती हैं। किसी के मत से ज्येष्ठा की अन्त की एक घड़ी तथा मूल की आदि की आधी घड़ी विशेषतया अभुक्त होती है। **महर्षि शौनक** के अनुसार अभुक्त मूल में उत्पन्न जातक को आठ वर्ष तक पिता न देखे। नवें वर्ष में शान्ति करवा कर उसके जन्म नक्षत्र के समय में मुख देखना चाहिए। इसी बात को **नारद** ने भी पुष्ट किया है।

(ii) **नक्षत्रविषघटिका**—सभी नक्षत्रों की कुछ निश्चित घड़ियां बीत जाने पर आगे की चार-चार घड़ियां नक्षत्रों की विषघटी या अमृत घटी होती हैं। नक्षत्रों की विषघटी प्रत्येक शुभ कार्य में वर्जित है। **मुहूर्त्त मार्तण्ड** के अनुसार नक्षत्रों की निम्नलिखित घड़ियां बीत जाने पर आगे की चार-चार घड़ियां विषघटियां कहलाएंगी—

अश्विनी	५० घटी	मघा	३० घटी	मूल	५६ घटी
भरिणी	२४ ,,	पूर्वाफाल्गुनी	२० ,,	पू० षा०	२४ ,,
कृतिका	३० ,,	उ० फाल्गुनी	१८ ,,	उ० षा०	२० ,,
रोहिणी	४० ,,	हस्त	२१ ,,	श्रवण	१० ,,
मृगशिरा	१४ ,,	चित्रा	२० ,,	धनिष्ठा	१० ,,
आर्द्रा	२१ ,,	स्वाति	१४ ,,	शतभिषा	१८ ,,
पुनर्वसु	३० ,,	विशाखा	१४ ,,	पू० भा०	१६ ,,
पुष्य	२० ,,	अनुराधा	१० ,,	उ० भा०	२४ ,,
आश्लेषा	३२ ,,	ज्येष्ठा	१४ ,,	रेवती	३० ,,

उपर्युक्त प्रकार से मध्यम मान की विषघटी जानी जा सकेगी। स्पष्ट करने के लिए निम्न विधि का अवलम्बन लेना चाहिए—

ऊपर बताई गई नक्षत्रों की घड़ियों को ध्रुवांक मानकर चलेंगे। जिस नक्षत्र की विषघटी जानना हो उसी नक्षत्र के भभोग मान को ध्रुवांक से गुणा करके साठ घड़ी से भाग देने पर स्पष्ट ध्रुवांक होता है। वास्तव में इस स्पष्ट ध्रुवांक के बराबर घड़ियां बीत जाने पर आगे की स्पष्ट विषघटी होगी।

स्पष्ट विषघटी के लिए भभोग को चार से गुणाकर साठ का भाग देना चाहिए। तब स्पष्ट विषघटी आ जाएगी।

पूर्वोक्त ध्रुवांक (स्पष्ट) के बाद स्पष्ट विषघटी के घड़ी पलों के समान समय तक विषघटी दोष रहेगा।

(iii) **स्थिरकरण** चार होते हैं—कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में—शकुनि, अमावास्या के पूर्वार्ध में--चतुष्पद, उत्तरार्ध में—नाग एवं शुक्ल पक्ष प्रतिपदा के पूर्वार्ध में—किंस्तुघ्न।

भद्रा विष्टिकरण का पर्यायवाची है। शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तथा अष्टमी के पूर्वार्ध में तथा एकादशी व चतुर्थी के उत्तरार्ध में **'भद्रा'** होती है। कृष्ण पक्ष की तृतीया और दशमी के उत्तरार्ध में तथा सप्तमी और चतुर्दशी के पूर्वार्ध में **'भद्रा'** होती है।

(iv) **संहार तारा** राशियों का एक विशेष प्रकार का विभाजन है। मेष, वृष, मिथुन व कर्क इन चार राशियों को **'सृष्टि तारा'** कहते हैं। सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, इन्हें **'स्थिति तारा'** तथा धनु, मकर, कुम्भ व मीन को **'संहार तारा'** कहते हैं।

इसी तरह अश्विनी से तीन-तीन नक्षत्र क्रमशः सृष्टि, स्थिति व संहार तारा कहलाएंगे—

सृष्टि तारा	**स्थिति तारा**	**संहार तारा**
अश्विनी	भरणी	कृत्तिका
रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा
पुनर्वसु	पुष्य	श्लेषा
मघा	पू० फा०	उ० फा०
हस्त	चित्रा	स्वाती
विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
मूल	पू० षा०	उ० षा०
श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा
पूर्वाभाद्र पद	उत्तराभाद्र पद	रेवती

(v) **व्यतिपात** योग से (लाट) यहां विष्कुम्भादि योग नहीं समझना चाहिए। यहां पर इस शब्द से तात्पर्य 'क्रान्तिसाम्य' महादोष से है। इसे व्यतिपात, अतिप.त या महापात नाम से भी जाना जाता है। इसका सूक्ष्म विचार महापात गणित से करना चाहिए, वह एक लम्बी सिद्धान्त ज्योतिष की प्रक्रिया है। भाव के बलाबल का विचार करने के प्रसंग में तो स्थूल क्रान्तिसाम्य से भी कार्य सिद्ध हो सकता है। **रामदैवज्ञ** आदि विद्वानों ने इसकी स्थूल स्थिति इस प्रकार मानी है—

"पंचास्याजौ गोमृगौ तौलिकुम्भो, कन्यामीनौ कर्क्यलो चाप युग्मम्।
तत्रान्योन्यं चन्द्रभान्वोर्निरुक्तं क्रान्तेः साम्यं नो शुभं मंगलेषु॥"

"सिंह तथा मेष में, वृष तथा मकर में, तुला तथा कुम्भ में, कन्या तथा मीन में, कर्क तथा वृश्चिक में, मिथुन तथा धनु में यदि एक ही समय चन्द्रमा व सूर्य स्थित हों तो क्रान्तिसाम्य दोष होता है जो सभी शुभ कार्यों में त्याज्य है।

एकार्गल दोष या खार्जूरवेध का विचार करते समय देखना चाहिए कि जिस दिन दोष विचार करना हो, उस दिन सूर्य का अधिष्ठित नक्षत्र तथा चन्द्र का अधिष्ठित नक्षत्र क्या है ? सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र पर्यन्त गिनने पर (अभिजित् सहित) यदि विषम संख्या हो तथा उस दिन निर्दिष्ट योगों में से कोई योग हो तो एकार्गल दोष होता है। वे योग हैं— व्याघात, शूल, व्यतिपात, वैधृति, गण्ड, वज्र, परिघ और अतिगण्ड।

(vi) **उष्ण** नक्षत्रों के प्रहर विशेष या घटी विशेष को कहते हैं। अश्विनी नक्षत्र की दूसरे प्रहर की पांच घड़ियां, भरिणी की अन्तिम प्रहर में नौ घड़ियां, भरिणी से स्वाति पर्यन्त शुरू की बाईस घड़ियां, तथा अन्त की तीन-तीन घड़ियां, विशाखा नक्षत्र की आरम्भ की आठ घड़ियां अनुराधा की अन्त की आठ घड़ियां, ज्येष्ठा के पूर्वार्ध की दस घड़ी तथा ज्येष्ठा के उत्तरार्ध के आगे रेवती पर्यन्त अन्त की तीन-तीन घड़ियां 'उष्ण' होती हैं।

दुरितांश से संहार नक्षत्रों के तीसरे व चौथे चरणों का ग्रहण करना चाहिए।

(vii) **सार्पशीर्ष से** तात्पर्य है 'सर्प का सिर यानी फन'। सूर्य व चन्द्रमा के योग के समय यदि अनुराधा नक्षत्र हो तो उसका अन्तिम चरण सर्प मस्तक कहलाता है। कहा गया है—

'चन्द्रार्कयोगे मैत्रान्त्यदलं स्यात्सार्पमस्तकम् ।"

(viii) **धूमादि अप्रकाश ग्रह** पांच हैं—धूम, व्यतिपात, परिवेष, इन्द्र धनु, उपकेतु।

इनका स्पष्ट मान ज्ञात करने के लिए तात्कालिक स्पष्ट सूर्य में (४/१३/२०/०) राश्यादिक जोड़ने से **'धूम स्पष्ट'** होता है।

स्पष्ट धूम को १२ राशि में से घटाने से **'व्यतिपात'** होता है। व्यतिपात में ६ राशि जोड़ देने से **'परिवेष'** होता है।

परिवेष को १२ राशि में से घटाने से **'इन्द्रधनु'** होता है। इन्द्र धनु में (०/१६/४०/०) राश्यादि जोड़ने से **'ध्वज या उपकेतु'** होता है। उपकेतु में (१/०/०/०) राश्यादि जोड़ने से पूर्व प्रयुक्त तात्कालिक सूर्य स्पष्ट पुन: प्राप्त हो जाता है।

(ix) **पृष्ठोदय राशियां**—मेष, वृष, कर्क, धनु तथा मकर हैं।

अधोमुख नक्षत्र—मूल, श्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद, भरिणी और मघा हैं।

राशियों के विषय में कहा गया है—

"ऊर्ध्वमुखो रविमुक्तो, युक्तो राशिरधोमुखो ज्ञेयः।
अभिलषितस्तिर्यग् स्यात् तेषां केन्द्राश्च तत्संज्ञाः॥" इति

सूर्य जिस राशि को अभी छोड़कर आया है वह **'ऊर्ध्वमुख'** कहलाती है। इस राशि से चतुर्थ, सप्तम व दशम राशि भी 'ऊर्ध्वमुख' होगी।

सूर्य जिस राशि में हो वह **'अधोमुख'** है। इस राशि से चतुर्थ, सप्तम व दशम राशि को भी 'अधोमुख' ही समझना चाहिए। जिस राशि में रवि जाएगा वह राशि **'अभिलषित'** राशि कहलाती है। इस राशि से चतुर्थ, सप्तम व दशम राशियां भी अभिलषित संज्ञक होती हैं।"

(x) **जलक्षय काल** से तात्पर्य है कि चन्द्रोदय से समुद्र के जलस्तर का उतरना। ज्वार-भाटा का कारण चन्द्रमा है, ऐसा स्पष्ट है। चन्द्रमा के उदित होने के १५ घड़ी (६ घंटे) तक तथा ३०वीं घड़ी से ४५वीं घड़ी तक (१२वें घंटे से १८वें घंटे तक) जल का स्तर बढ़ता है, अर्थात् उक्त समय 'ज्वार' का होता है। इसके अतिरिक्त १५वीं घड़ी से ३०वीं घड़ी के बीच का समय तथा ४५वीं घड़ी से ६०वीं घड़ी तक का समय **'जलक्षय काल'** कहलाता है। स्वयं ग्रन्थकार की विवृत्ति है—

"चन्द्रोदयकालतः पञ्चदशघटिकान्तं यावत्तथा त्रिशद् घटिकातः पञ्चचत्वारिंशद् घटिकान्तं यावत्तोयवृद्धिकालः। एवं पञ्चदशघटिकातः त्रिशद् घटिकान्तं यावत्तथा पञ्चचत्वारिंशद्घटिकातः षष्ठिघटिकान्तं यावत्तोयक्षयकालो ज्ञेयः।' इति

उपर्युक्त सभी स्थितियां (गण्डान्तादि) अशुभ होती हैं। **जातकादेश मार्ग** में भी इनकी सूची गिनायी गयी है। आशय यही है कि जन्मकुण्डली का विचार करते समय इन अशुभ विशेष काल विभागों का सावधानी से निरीक्षण तथा परीक्षण करना चाहिए।

नेष्टं समर्क्षांशगतत्वमीरितं
तनूजराशेश्च नपंसदृग्युती।
किन्त्वत्र मान्देर्यमकण्टकस्य च
योगेक्षणादीनि शुभानि सन्ततम् ॥२८॥

पंचम स्थान में सम राशि तथा सम नवांश तथा नपुंसक ग्रहों (बुध शनि) की दृष्टि या युति अशुभ होती है। यदि इस स्थान में यम कण्टक और मान्दि का योग हो या दृष्टि हो तो शुभफल होता है।

टिप्पणी—ग्रहों में नर-नारी का विभाग बताया गया है—

"बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषाः।"

'बुध व शनि नपुंसक हैं, शुक्र व चन्द्रमा नारी तथा शेष (सूर्य, मंगल, बृहस्पति) नर ग्रह हैं।

मान्दि शनि के पुत्र के रूप में माना गया है तथा लग्न शुद्धि के प्रसंग में मान्दि या गुलिक का प्रयोग साधन किया जाता है।

'यम कण्टक' एक उपग्रह है। उपग्रहों की संख्या नौ है—काल, परिवेष, धूम, अर्धयाम, यमकण्टक, इन्द्रधनु, गुलिक, व्यतिपात तथा उपकेतु (ध्वज)। इनमें पूर्वोक्त धूमादि अप्रकाश ग्रहों की भी गणना की जाती है।

श्लोक में वर्णित योग के विषय में **जातकादेशमार्ग** में कहा गया है—

"युग्मभाशंक गतत्वमनिष्टं षण्डवीक्षणयुतो सुतभस्य।
किंतु तत्र यमकण्टकमान्द्योर्योगवीक्षणमुखानि सुखानि॥"

"पंचम स्थान में सम राशि व नवांश तथा नपुंसक ग्रहों की दृष्टि या युति अशुभ होती है।

किंतु यम कण्टक और मान्दि का योग या दृष्टि इस स्थान में शुभ होती है।"

देहप्राणांशौ भपीयूषघट्यः
सद्दृग्योगौ सृष्टितारा जलर्द्धिः।
ऊर्ध्वास्याख्यो यस्य केन्द्रत्रिकोण-
सम्प्राप्तत्वं प्रोक्तमिष्टं सुधीन्द्रैः ॥२९॥

देह और प्राण (नवांश विशेष), नक्षत्रों की अमृतघटी, शुभग्रहों की दृष्टि या योग, सृष्टि नक्षत्र, जलवृद्धिकाल, ऊर्ध्वमुख ग्रह तथा नक्षत्र एवं केन्द्र त्रिकोण में ग्रहों की स्थिति ये सब विद्वानों ने शुभ बताए हैं।

टिप्पणी (i)—जन्म समय में चन्द्रमा जिस नवांश में हो वह 'देह' संज्ञक होता है। जन्म लग्न का नवांश 'प्राण संज्ञक' होता है। गुलिक जिस नवांश में हो, वह 'मृत्यु संज्ञक' होता है। तीनों के योग को 'त्रिस्फुट' कहते हैं। इस त्रिस्फुट का नवांश 'काल' संज्ञक होता है—

"प्राणो लग्ननवांशश्चन्द्रनवांशः समीरितो देहः।
गुलिक नवांशो मृत्युः कालः स्यात् त्रिस्फुटस्यांशः॥" प्रश्नमार्ग

"लग्न का नवांश प्राण, चन्द्र नवांश देह, गुलिक नवांश मृत्यु तथा त्रिस्फुट नवांश काल होता है।"

देह, प्राण व काल के स्पष्ट करने के विषय में भी प्रश्नमार्ग में बताया गया है—लग्न स्पष्ट को पांच से गुणा कर उसमें स्पष्ट मान्दि को जोड़ देने से **'प्राण स्पष्ट'** हो जाता है।

चन्द्र स्पष्ट को आठ से गुणा कर स्पष्ट मान्दि को जोड़ देने से **'देह स्पष्ट'** होता है। गुलिक (मान्दि) स्पष्ट को सात से गुणाकर उसमें सूर्य स्पष्ट जोड़ देने से **काल (मृत्यु) स्पष्ट** हो जाता है।

प्राण और देह स्पष्ट का योग यदि मृत्यु स्पष्ट से अधिक हो तो भाव या मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है। स्वयं ग्रन्थकार लिखते हैं—

"...प्राणादयो यदि स्पष्टमृत्युतः प्राण (जीव) कलेवर (देह) योर्योगोऽधिकः स्यात्तदा जातो भावश्चिरं जीवति।"

(ii) नक्षत्रों की **अमृतघटी** जानने के लिए कृत्तिका से शुरू कर क्रमशः गिनना चाहिए, निम्नलिखित घटियां बीत जाने के बाद की चार-चार घड़ियां अमृतघटी कहलाती हैं—

कृत्तिका-५४, रोहिणी-५२, मृगशिरा-३८, आर्द्रा-३५ पुनर्वसु-५४, पुष्य-४४, श्लेषा-५६, मघा-५४, पू० फा०४४, उ० फा०-४२, हस्त-४५, चित्रा-४४, स्वाती-३८, विशाखा-३८, अनुराधा-३४, ज्येष्ठा-३८, मूल-४४, पू० षा०-४८, उ० षा०-४४, श्रवण-३४, धनिष्ठा-३४, शतभिषा-४२, पू० भा०-४०, उ० भा०-४८, रेवती-५४, अश्विनी-४२, भरिणी-४८।

(iii) जलवृद्धिकाल श्लोक सं० २७ टिप्पणी में बताया जा चुका है। सृष्टि आदि नक्षत्रों का विभाग भी वहीं पर विवेचित कर चुके हैं। ऊर्ध्वमुख नक्षत्र वह है जिसे छोड़कर अभी सूर्य अगले नक्षत्र में हो गया हो। **गरुड़ पुराण** में कुछ नक्षत्रों की सूची दी गई है जिन्हें ऊर्ध्वमुख नक्षत्र माना गया है—

"रोहिण्यार्द्रा तथा पुष्यो, धनिष्ठा चोत्तरात्रयम्।
वारुणं श्रवणं चैव नव चोर्ध्वमुखाः स्मृता॥"

रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, धनिष्ठा तथा तीनों उत्तरा, शतभिषा तथा श्रवण ये नौ नक्षत्र 'ऊर्ध्वमुख' हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्त का उल्लेख **'जातकादेशमार्ग'** में इस तरह है—

"प्राणांशदेहांशक सृष्टितारा:, पीयूषनाड्यः शुभदृष्टियोगौ।
जलर्द्धिरुर्ध्वाननकोऽपि यस्य, केन्द्र त्रिकोणपगतत्वमिष्टम्॥"

'प्राण व देह नवांश, सृष्टि नक्षत्र, अमृत घड़ियां, शुभग्रह की युति या दृष्टि, जलवृद्धिकाल, ऊर्ध्वमुख नक्षत्र तथा केन्द्र त्रिकोण गत ग्रह ये इष्ट (शुभ) कारक होते हैं।"

ग्रहों की जन्म तिथि निकालना :

इतीह गुणवैगुण्ये चिन्तयेद्भावखौकसाम्।
निजस्फुटादपास्येनं निखिलानां विदुस्तिथिम्॥३०॥

इस तरह सूर्यादि ग्रहों तथा तन्वादि द्वादश भावों के गुणों व दोषों का विचार करना चाहिए।

ग्रहों की स्पष्ट राश्यादि में से क्रमशः स्पष्ट सूर्य को घटा कर शेष के अंशादि बनाकर बारह का भाग देना चाहिए। लब्धि में एक जोड़कर प्रत्येक ग्रह की वर्तमान तिथि जानी जा सकेगी।

इसी तरह सभी ग्रहों की तिथियां जानकर देखना चाहिए कि यदि वे चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी हैं तो अशुभ फल समझना चाहिए।

टिप्पणी—जातकादेशमार्ग के कथन से भी इसकी पुष्टि होती है। वहां कहा गया है—

"एवं भावग्रहाणां च गुणदोषौ विचिन्तयेत्।
स्वस्फुटादेव सर्वेषां भानुं त्यक्त्वा तिथिं विदुः॥"

"इस प्रकार भाव व ग्रहों के गुण दोषों का विचार करना चाहिए। ग्रह स्पष्ट में से स्पष्ट रवि को घटाने से ग्रह की तिथि जाननी चाहिए।

यह 'प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में भावोपचयापचय प्रकरण समाप्त हुआ।

७ भावफल कालबोध प्रकरण

भाव के फलोदय का समय-निर्धारण :

भावाधीशो भावगो भावदर्शी
चिन्त्यास्तन्वादेर्गुणास्तैः स्वभावः।
भावस्याथो लग्नभावेशयोः
सम्बन्धाद्वाये गोचरेणानुभूतिः ॥१॥

स्याद्भावस्याथात्र भावे शुभर्क्षे
सोर्ज्जैः सन्मित्रेश्वरैर्युक्तदृष्टे।
भावेशाने कारके वा सवीर्य्ये
पूर्वैर्धीरैर्भावनिष्पत्तिरुक्ता ॥२॥

तन्वादि वारह भावों के स्वामी ग्रह, भाव में विद्यमान ग्रह तथा भाव पर दृष्टि रखने वाले ग्रह, इन तीनों से शरीरादि के गुणों व दोषों को तथा भाव की प्रकृति व स्वरूप को जानना चाहिए। लग्नेश और भावेश के सम्बन्ध से, जव लग्नेश या भावेश का पूर्वोक्त चार प्रकार का सम्बन्ध (कोई एक या अधिक) हो तो गोचर में तथा उन ग्रहों की विंशोत्तरी आदि दशा के भोग-काल में उस भाव से सम्बन्धित फलोदय वताना चाहिए।

यदि भाव में शुभग्रह की राशि हो, वह शुभग्रह वलवान् होकर मित्र या स्वामी ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तथा भावेश व भावकारक वली हों तो भाव का लाभ (सिद्धि) होता है।

टिप्पणी—दोनों श्लोकों में वर्णित भाव की पुष्टि **'जातकादेश-मार्ग'** के कथन से होती है—

"...भावानुभूतिरिह भावविलग्नपत्योः
सम्बन्धतो भवति चारवशाद् दशादौ।"

'भावेश व लग्नेश के शुभ सम्बन्ध से दशा में (गोचर या विंशोत्तरी आदि) फलानुभूति होती है।'

भाव सिद्धि के विषय में भी कहा गया है—

"भावे शुभर्क्षे शुभनाथमित्रैर्युक्तैः बलाढ्यैरवलोकिते वा।
भावाधिपे कारकखेचरे वा बलान्विते सिद्धिमुपैति भावः।।"

'भावस्थित शुभराशि, भावेश की मित्र या स्वामी ग्रहों से युति तथा बलवान् होना, दृष्ट होना, भावेश व कारक की बलवत्ता होने पर भावसिद्धि होती है।'

भावसिद्धि व हानि का विचार :

सोर्ज्जेष्वेष्वयुतेक्षितेष्वपि सुहृत्सत्स्वामिभिः स्यात्तदा।
भावाप्तिर्यदि वैषु पापमृतिरुङ्नाथाढ्यदृष्टेषु चेत्।
विद्याद्भावविनाशमुग्रखचरैः पार्श्वद्वयस्थैः समै-
र्ध्यङ्काम्बाष्टमगैस्तथेह शुभदैर्भावस्य वृद्धिं वदेत्।।३।।

विशेषतः कारकतोऽथभावे
बल्युग्रनाथेन समेतदृष्टे।
स्याद् दुष्टभावो विबलेन तेन
युतेक्षिते गर्हितभावलाभः।।४।।

भाव, भावाधिपति व भावकारक यदि ये तीनों बली हों तथा अपने मित्रों, शुभस्थानों के स्वामियों, अथवा शुभग्रहों से युत या दृष्ट न भी हों तो भी भाव का लाभ करते हैं।

यदि ये तीनों पापग्रह या षष्ठेश व अष्टमेश से युत या दृष्ट हों तो भाव का नाश होता है।

भाव से दूसरे व बारहवें पापग्रह हों, पापग्रहों से भाव घिरा हो, अथवा भाव से त्रिकोण स्थानों में या चतुर्थ अष्टम में पापग्रह हों तो भाव का नाश होता है।

यदि भाव से द्वितीय, द्वादश, पंचम, नवम, चतुर्थ तथा अष्टम में शुभग्रह हों तो भाव की वृद्धि होती है।

विशेषतया लक्षण यदि भावकारक ग्रह पर लागू होते हों तो विशेष वृद्धि समझनी चाहिए।

यदि भावेश पापग्रह हो और वह बली होकर भाव में स्थित हो या भाव को देखे तो भाव दुःखदायक होता है।

यदि पापग्रह भावेश निर्बल हो तथा भाव में हो या वहां पर उसकी दृष्टि हो तो भाव निन्दित होता है, अर्थात् भाव की प्राप्ति अच्छी तरह नहीं होती है।

टिप्पणी—भाव, भावेश व भावकारक यदि बलवान् तथा शुभ ग्रहों से युत दृष्ट हों तो भाव की वृद्धि होती है तथा विपरीत स्थिति में भाव का नाश होता है। उक्त अर्थ की पुष्टि **जातकादेशमार्ग** के इस कथन से होती है।

बलान्वितेष्वेषु शुभेशमित्रैरयुवतदृष्टेषु च भावलाभः।
पापारिरन्ध्रेश समेत दृष्टेष्वेतेषु विद्यादिह भावनाशम्।।"

"यदि ये तीनों बलवान् तथा शुभस्थानेश या शुभग्रहों से युत वा दृष्ट न भी हों तो भी इनके भाव का लाभ होता है। पापग्रहों या षष्ठेश, अष्टमेश से युत या दृष्ट हों तो भाव का नाश होता है।"

भाव से द्वितीय, द्वादश, चतुर्थ, अष्टम व त्रिकोण स्थानों में शुभ ग्रहों का होना भाव की वृद्धि का सूचक है। विपरीत स्थिति में भाव का नाश होता है। आशय यह है कि द्वितीय, द्वादशादि उक्त भावों में शुभ ग्रहों के होने से भाव पर शुभ प्रभाव तथा शुभ मध्यता आ जाती है, अतः भाव की वृद्धि स्वाभाविक है। इसके विपरीत पापग्रहों के वहां होने से भाव पापप्रभाव में आ जाएगा, अतः भाव का नाश होगा। **जातकादेशकार** ने कहा है—

"पार्श्वद्वयस्थैश्चतुरस्रगैर्वा त्रिकोणगैर्वा सकलैश्च पापैः।
भावस्य नाशं शुभदैश्च वृद्धि समादिशेत् कारकतो विशेषात्।।"

"भाव के दोनों ओर, चतुर्थ, अष्टम तथा त्रिकोण में यदि सभी पापग्रह हों तो भाव का नाश तथा शुभ ग्रहों के होने से वृद्धि होती है। उक्त स्थानों में शुभग्रहों के साथ यदि कारक भी विद्यमान हो तो भाव की विशेष वृद्धि समझनी चाहिए।"

तीसरे नियम के अनुसार जो भाव की दुःखप्रदता तथा कुत्सित भाव का वर्णन किया गया है, वहां भाव की दुःखप्रदता का अर्थ यह है कि उक्त भाव को इस स्थिति में, चाहे वह शुभ भाव ही क्यों न हो, दुष्टभाव की तरह समझकर विचार करना चाहिए। भावेश की निर्बलता होने पर भाव कुत्सित हो जाता है, अर्थात् भाव सम्बन्धी फल का लाभ अत्यन्त हीनता या नीचता से होता है।

भावजन्म के शुभाशुभ योग :

लग्नाधीशजनीशभावपतयो भांशेषु येषु स्थिता
भावास्तद्भभवाः फलन्ति किमुतन्नीचोच्चगेहोद्भवाः ।
भावेट्तत्सहितेक्षकर्क्षजनिता भावाः शुभाः स्युस्ततो-
ऽनिष्टाःस्यूरणरिःफरोगरमणर्क्षांशादिकेषूद्भवाः ॥५॥

जन्म लग्नेश, जन्म चन्द्रेश और विचारणीय भावेश, ये तीनों जिन राशियों या नवांशों में हों, अथवा इनकी नीच व उच्च राशियों में यदि भाव की उत्पत्ति होती है तो भाव फलित होता है। भावेश, भावेश से युक्त या भावेश पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों की राशियां या नवांशों में उत्पन्न भाव शुभ होते हैं। अष्टमेश, षष्ठेश व द्वादशेश की राशियों या नवांशों में उत्पन्न भाव अनिष्ट फल देने वाले होते हैं।

टिप्पणी—भाव की उत्पत्ति के विषय में पीछे भी बताया जा चुका है। यदि भाव की उत्पत्ति लग्नेश, भावेश, जन्म चन्द्रेश की स्थित राशि या नवांश में होगी तो भाव पूरा फल प्रदान करेगा, अर्थात् फलित होगा। इनकी नीचोच्च राशियों में यदि उत्पन्न हों तो भी उक्त फल होता है।

भावेश व भावेश युत या दृष्ट ग्रहों की राशियों में उत्पन्न भाव भी शुभ होते हैं। षष्ठ, अष्टम व द्वादश स्थानाधिपों की राशियों या नवांशों में उत्पन्न भाव अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। **जातकादेश-मार्ग** में कहा गया है—

"लग्नेश जन्मेश्वर भावनाथा येषु स्थिता भेष्वथवांशकेषु।
तद्राशिजाताश्चफलन्ति भावास्तदीय नीचोच्चगृहोद्भवा वा॥"

"लग्नेश, राशीश तथा भावेश जिन राशियों में या नवांशों में स्थित हों, उनमें या इनकी नीचोच्चराशियों में उत्पन्न भाव अपना फल देते हैं।"

भाव की उत्पत्ति जानने के लिए ग्रन्थकार आगे नियम बता रहे हैं।

भाव की जन्मराशि का ज्ञान :

कलेवरेट्कारकयोः कलेवर-
भावाधिपत्योः स्फुटयोगजातभे ।

भावोद्भवः कारकयुक्तभांशके
वा तन्नवांशे रविकारकारख्ययोः ॥६॥

जन्म लग्न के स्वामी तथा भाव कारक की स्पष्ट राश्यादि के योग से प्राप्त राशि में भाव की उत्पत्ति समझनी चाहिए। अथवा जन्म लग्नेश और भावेश के स्पष्ट राश्यादि योग के अनुसार भावोत्पत्ति जानें।

भाव का कारक जिस राशि में, जिस नवांश में विद्यमान हो उसमें भी भावोत्पत्ति कही जाती है।

सूर्य स्पष्ट व भाव कारक स्पष्ट के योग में भाव का जन्म होता है।

टिप्पणी—यहां पर भावोत्पत्ति जानने के लिए कई प्रकार बताए गए हैं।

(i) लग्नेश स्पष्ट व कारक स्पष्ट के योग से।
(ii) लग्नेश व भावेश के योग से।
(iii) कारक राशि या कारक नवांश राशि में।
(iv) रवि स्पष्ट व भावकारक स्पष्ट के योग से।

भावों की जन्म राशि जानी जा सकती है।

इस तरह यह आवश्यक नहीं है कि सभी प्रकारों का अवलम्बन करके किसी भाव की एक ही जन्म राशि आएगी। उपर्युक्त पांचों प्रकार में से जिस राशि का आनयन एकाधिक विधि से समान हो, उसे ही राशि मान लीजिए, ऐसा हमारा विचार है। एक और विधि भी हो सकती है कि भावेश और भावकारक में से जो अधिक बलवान् हो, उसे ही इस क्रिया में प्रधान मानकर जन्म राशि निर्णय में सहायक मानना चाहिए। पीछे गुणपिण्ड क्रिया से आगत नक्षत्र की राशि भी कदाचित् जन्मराशि मानी जाती है। वैसे **जातकादेशमार्ग** में भी उपर्युक्त विधियां बताई गई हैं—

"लग्नाधिपकारकयोर्लग्नाधिपभावनाथयोरथवा ।
स्फुटयोगजनक्षत्रे भावानां जन्म निर्दिशेन्मतिमान् ॥"

"लग्नेश व कारक से अथवा लग्नेश भावेश के योग से भावों का जन्म बुद्धिमानों को जानना चाहिए।"

हम समझते हैं कि उपर्युक्त प्रकारों में से लग्नेश भावकारक व लग्नेश भावेश के योग से ही प्रधानतः भावराशि का ज्ञान करना अधिक युक्तिसंगत होगा ।

नवांश व कारक तथा सूर्य और कारक का विकल्प इस विषय में जातकादेशमार्ग के कर्त्ता को मान्य है—

"कारकयुक्ते राशौ नवांशकेऽथवा तन्नवांशे ।
कारकदिनकरयोर्वा स्फुटयोगे भावजन्म वक्तव्यम् ।।"

"कारक की राशि या कारक की नवांश राशि को अथवा सूर्य व भावकारक के योग को भाव की राशि समझनी चाहिए ।"

भाव की दिशा :

स्फुटैक्यभे भावजनिः प्रदिष्टा
भावेशभावोपगवीक्षकाणाम् ।
दिक्सम्भवा भावपकारकाख्य-
राश्यंशदिग्जाः प्रभवन्ति भावाः ।।७।।

भावेश, भाव में स्थित ग्रह या भाव पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों की दिशा में भाव का जन्म समझना चाहिए। भावेश और भावकारक की राशि या नवांश राशि की दिशाओं में भी भाव का जन्म बताया जाता है ।

टिप्पणी—उपर्युक्त दिग्विभाग के विषय में **जातकादेशमार्ग** में कहा गया है—

'भावेशभावगतवीक्षकदिग्भवा वा भावेशकारकगृहांशकदिग्भवा वा । भावा भवति······।"

'भावेश, भावगत व भावदर्शी ग्रहों की दिशा में अथवा भावेश व कारक के नवांश की दिशा में भाव होता है।"

ग्रहों की दिशा के विषय में ध्यातव्य है—

"सूर्यः शुक्रः क्षोणिपुत्रः सैंहिकेयः शनिः शशी ।
बुधो बृहस्पतिश्चैते दिशाभीशास्तथा ग्रहाः ।।"

"पूर्व का स्वामी सूर्य, अग्निकोण—शुक्र, दक्षिण—मंगल, नैऋत्य—राहु, पश्चिम—शनि, वायव्य—चन्द्रमा, उत्तर—बुध व ईशान का स्वामी बृहस्पति होता है।"

भाव का जन्मस्थान व दूरी का ज्ञान :

उदिता ये नभोवासाश्चराद्यैस्तैर्गृहांशकैः ।
प्रमाणमपि मार्गस्य तत्र ब्रूयाद्विचक्षणः ।।८।।

जन्म के समय जो ग्रह उदित अर्थात् पूर्वादि दिशागत हों उनकी चरादि राशि या नवांश के तुल्य योजन उस भाव के जन्मस्थान की दूरी समझनी चाहिए ।

टिप्पणी—जन्म कालीन उदित ग्रह की राशि या नवांश के बराबर योजन दूरी पर भाव का जन्म समझा जाता है। **जातकादेशमार्ग** में भी कहा गया है—

"···**उदितखेटगृहांशकैस्तैर्मार्गप्रमाणमपि तत्र वदेच्चराद्यैः ।" इति**

"उदित ग्रह की राशि या नवांश के तुल्य चरादि क्रम से जन्म स्थान का प्रमाण समझना चाहिए।"

भावों की संख्यादि का विचार :

भावेशस्येतांशकास्तत्समान-
संख्या भावाः स्युस्तदंशङ्गुणाढ्याः ।
सोर्ज्जैस्तैश्चेद्भावसिद्धि वदन्ति
यद्यर्ज्जोनैस्तैस्तदा भावनाशम् ।।६।।

भावेश के जितने गत नवांश हों उनमें उसके वर्तमान नवांशेश के गुणों का योग करने से भावों की संख्यादि का ज्ञान हो जाता है। यदि ये गत नवांश बली हों तो भाव की सिद्धि कहनी चाहिए तथा निर्बल होने पर भावों की हानि करते हैं।

भावफल सिद्धि का समय :

भावे यदा तदिनगर्क्षलवे चरन्ति
तत्कोणभे च तनुभावपकारकाख्याः ।

भावा भवन्ति सफला मृतिमान्दिभेशौ
तत्राकृतित्रिलवपः किमु तत्क्षतिः स्यात् ।।१०।।

भाव की राशि में, भाव के स्वामी की आक्रान्त राशि में अथवा नवांश में अथवा इनकी नवम पंचम राशि में जब गोचर से लग्नेश, भावेश व भावकारक का संक्रमण हो तो उस समय भाव फल देता है।

उक्त भावराशि, भावेश राशि या नवांश में जब गोचर से अष्टमेश, मान्दि राशीश अथवा बाईसवें द्रेष्काण के स्वामी का संक्रमण हो तो भावों का नाश होता है।

टिप्पणी—जिस भाव का विचार करना हो, उस भाव की राशि में अथवा भावेश की राशि या नवांश में अथवा इनकी त्रिकोण राशियों में जब-जब लग्नेश, भावेश व भावकारक आएंगे तब-तब उस भाव के फल का लाभ होगा। जब-जब इन राशियों में अष्टमेश का तथा मान्दि राशीश या बाईसवें द्रेष्काण के स्वामी का संक्रमण होगा तो फल हानि होगी। इस तरह भावफल की सिद्धि या हानि के समय का ज्ञान कर जीवन के लाभप्रद व हानिप्रद वर्षों का निर्णय दैवज्ञ को कर लेना चाहिए। **जातकादेशमार्ग** की साक्षी प्रस्तुत है—

"भावे तदीशस्थितभांशके वा तेषां त्रिकोणे च यदा चरन्ति।
लग्नेशभावाधिपकारकाख्यास्तदा तु भावाः सफला भवन्ति।।"

"भाव, भावेश राशि या नवांश अथवा त्रिकोणों में जब भावेश भावकारक या लग्नेश का गोचर आये तो भाव सफल होते हैं।"

भावों के फल-नाश के विषय में भी कहा गया है—

'यदा चरन्ति तत्रैव रन्ध्रपो मान्दिभेश्वरः।
खरद्रेक्काणपो वापि भावनाशस्तदा भवेत्।।'

"जब पूर्वोक्त राशियों में अष्टमेश, मान्दि राशीश या २२वें द्रेष्काण का स्वामी आये तो भाव का नाश होगा।"

भाव लाभ के समय के अन्य योग :

भावाप्तिः पौरराशि किमुदयभवनेशस्यभांशत्रिकोण
भावेशे कारके वा गतवति किमुताङ्गेशभावेशयोगे।

अन्योन्यं वीक्षणे वाऽदितितनयगुरौ भावनाथस्थभांशं
प्राप्ते वा तत्त्रिकोणं किमु तनुभवनेड्भावपत्योः स्फुटैक्ये ।।११।।
राश्यंशे वाऽथ तस्मात्तनयगृहतपोभङ्गतेऽथोस्फुटैक्यं
भावाङ्गेट्कारकाणां भवनमुपगते वाक्पतौ भावलाभः ।
जीवग्लौकारकाख्यास्तनुपगतनवांशेशराशौ विशन्ति
तत्काले भावलाभस्त्विह भवति तदा प्रायशो मानवानाम् ।।१२।।

लग्न की राशि में, लग्नेश द्वारा आक्रान्त राशि में अथवा इन दोनों के नवांश में, भावेश या भावकारक आये तब भाव प्राप्ति होती है।

जब गोचर में भावेश व लग्नेश का सम्बन्ध (पूर्वोक्त चार प्रकार का सम्बन्ध) हो अथवा दोनों का योग हो तो भाव के फल की प्राप्ति होती है।

भावेश की अधिष्ठित राशि में या नवांश राशि में अथवा दोनों से त्रिकोण राशियों में जब गोचर से बृहस्पति आये तो लाभ होता है।

लग्नेश व भावेश के स्पष्ट राश्यादि योग में या योग के नवांश में व त्रिकोण में जब बृहस्पति का संक्रमण हो तो भाव का लाभ होता है।

लग्नेश, भावेश व भावकारक के स्पष्ट राश्यादि योग में जब गुरु आता है तो भाव के फल का लाभ होता है।

जन्म लग्नेश जिस नवांश में हो उस राशि में जब बृहस्पति चन्द्रमा और भावकारक संक्रमण करेंगे, तब-तब प्रायः भाव की प्राप्ति होती है।

टिप्पणी—जन्म लग्न या चन्द्र लग्न में से जो अधिक बलवान् हो, उसे ही इस विषय में प्रयुक्त करना चाहिए। गोचर विधि से उपर्युक्त राशियों में जब ये ग्रह आयेंगे तो भाव से सम्बन्धित फल का लाभ होगा। फलदीपिका में कहा गया है—

"भावेशस्थितभांशकोणमपि वा भावं तु वा लग्नपो,
लग्नेशस्थितभांशकोणमुदयं वायाति भावाधिपः ।
संयोगेऽपि विलोकनेऽपि च तयोस्तद्भाव सिद्धि तदा,
ब्रूयात्कारकयोगतस्तनुपतेर्लग्नाच्च चन्द्रादपि ।।"

भावेश जिस राशि या नवांश में स्थित हो, उसमें या उससे त्रिकोण राशियों में जब लग्नेश आता है अथवा भावेश आता है, अथवा लग्नेश व भावेश के योग में या दृष्टि सम्बन्ध में भी भावसिद्धि होती है। भावसिद्धि का विचार कारक व लग्नेश के योग से भी होता है।

चन्द्र लग्न या जन्म लग्न से (जो अधिक बली हो) भाव का विचार करना चाहिए।"

स्वीयोत्पत्तौ यत्फलं यस्य येन
वाच्यं खेटेनोद्गमागारयाते।
तस्मिन्खेटे तत्फलं तस्य तज्ज्ञो
ब्रूयाद्वाङ्गेशस्थभांशत्रिकोणम् ॥१३॥

जन्म लग्न के समय जिस भाव का जिस ग्रह से फल कहना हो, वह ग्रह जब लग्न में, लग्नेशाधिष्ठित राशि में या नवांश में या त्रिकोण राशियों में अथवा स्वराशि या स्वनवांश या त्रिकोण में आएगा तो विद्वानों को फल प्राप्ति कहनी चाहिए।

टिप्पणी—सामान्यतः भाव, भावेश व भावकारक में से जो सर्वाधिक बलवान् हो उससे ही भाव का फल कहा जाता है। जब-जब वह ग्रह लग्न में आता है तो भाव सिद्धि होती है।

इसके विकल्प के रूप में लग्नेशाधिष्ठित राशि या नवांश, स्वराशि व नवांश तथा इन सबके त्रिकोणों का भी ग्रहण किया गया है।

प्राप्ते स्वर्क्षांशत्रिकोणर्क्षयाते
तस्मिन्वाच्यं तत्फलं वा फलानाम्।
दातारो ये खेचरास्तद्गभांश-
तत्कोणर्क्षे चेच्चरत्यङ्गनाथः ॥१४॥

शुभाशुभ फल के कारक जो ग्रह हों उनकी आक्रान्त राशि में या नवांश में अथवा त्रिकोण राशियों में जब लग्नेश गोचर में आएगा तब उस ग्रह का शुभाशुभ रूप फल होरावेत्ताओं ने बताया है।

तज्ज्ञैस्तस्य फलं वाच्यं तत्रैवेन्द्वार्य्यभास्कराः।
सञ्चरन्ति तदा ब्रूयात्तत्फलं सदसत्किमु ॥१५॥

फलदायक ग्रहों की आक्रान्त राशि, नवांश राशि या त्रिकोण राशियों में जब चन्द्र, गुरु व सूर्य आएंगे तब-तब भाव सम्बन्धी शुभाशुभ फल की प्राप्ति होगी।

भावेशादियों के दशा-काल में फलोदय :

भावेशस्तत्कारको भावदर्शी
भावस्थो यश्चागमे तद्दशानाम्।
भावाः स्युश्चेद्भावलाभस्तदानीं
ते खेटा नाशप्रदा भावनाशाः ॥१६॥

भावेश, भावकारक, भाव पर दृष्टिकारक ग्रह और भाव में विद्यमान ग्रह, इनमें से जो-जो भाव के फलकारक हों, उनकी दशाओं के भोगकाल में भाव से सम्बन्धित फल की प्राप्ति होती है।

यदि ये ग्रह भाव के हानिकारक हों तो इनकी दशाओं में भाव हानि होगी।

टिप्पणी—भावेश व भावकारक, दृष्टिकारक व युतिकारक ग्रह यदि बलवान् होते हैं तो शुभ फल करते तथा निर्बल व दुष्टस्थानगत हों तो हानि करते हैं। यह विषय पीछे स्पष्ट किया जा चुका है। इनकी दशा-भुक्ति में तदनुसार ही फल होता है।

भावेशतत्कारकखेचराश्रित-
राश्यंशनाथेषु खगेषु यो बली।
दायेऽपहारे किमु तन्नभः सदो
भावा भवेयुस्त्विति कोविदा विदुः ॥१७॥

विचारणीय भाव का स्वामी तथा भाव का कारक ग्रह एवं इन दोनों की अधिष्ठित राशि व नवांश के स्वामी ग्रहों में जो सबसे अधिक बलवान् हो, उसी ग्रह की दशा के समय में अथवा अन्तर्दशा में विद्वानों ने उक्त भाव का फल बताया है।

टिप्पणी—इस विषय में जातकादेशमार्ग की साक्षी है—

भावेशकारकाभ्यामाश्रितराश्यंशपेषु विहगेषु।
बलसहितस्य दशायामपहारे वा भवन्ति भावास्ते ॥"

'भावेश, कारक व इनकी अधिष्ठित राशि व नवांश के अधिपतियों में जो सर्वाधिक बली हो, उसकी दशान्तर्दशा में भाव का फल होता है।'

यो भावभावेश्वरकारकेषु च
स्याद्भावदाता किल तद्दशागमे।
किं तत्समेतांशपतेर्दशागमे
भावस्य सिद्धिर्भवतीति केचन ॥१८॥

भाव, भावेश व भावकारक ग्रहों में जो सबसे अधिक फलदायक (बलवान्) हो उसकी दशा में, अथवा उसके अधिष्ठित नवांशेश की दशा आने पर भाव की सिद्धि होती है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।

यद्भावस्थो गोचराद्वायनाथो
लग्नात्स्वोच्चस्वर्क्षगो मित्रभस्थः।
सारोपेतो जन्मकालेऽपि तस्य
चेत्कुर्य्यात्तद्भावपुष्टिं तदानीम् ॥१९॥

दशा का स्वामी (महादशेश) गोचर से अथवा लग्न से जिस भाव में स्थित हो, यदि वहां वह अपने उच्च गृह, स्वगृह या मित्रगृह में हो तथा जन्म समय में भी वली हो तो उस भाव की तब पुष्टि करता है।

टिप्पणी—आशय यह है कि जिस की ग्रह दशा वर्तमान हो, वह यदि गोचर में अपनी राशि में, अपनी उच्चराशि में अथवा मित्र की राशि में हो तथा व्यक्ति की जन्म कुण्डली में भी वह ग्रह बलवान् हो तो जन्म समय वह जिस भाव का स्वामी होगा, उस दशा काल में उस भाव की वढ़ोतरी होगी। **मंत्रेश्वर** ने भी कहा है—

"यद्भावगो गोचरतो विलग्नाद् दशेश्वरः स्वोच्चसुहृद्गृहस्थः।
तद्भाव पुष्टिं कुरुते तदानीं बलान्वितश्चेज्जननेऽपि तस्य ॥"

"गोचर व लग्न से दशेश जिस स्थान में स्वगृहोच्च व मित्रग्रह में होगा तथा जन्म समय में भी बलवान् हो तो उस भाव के फल की प्राप्ति अपने दशा भोग में करवाएगा।"

भावसिद्धि के कुछ अन्य योग :

खलग्रहा भावगृहात्सहोदर-
लाभारिगाः कण्टककोणभाश्रिताः ।
सौम्यग्रहा भावपतेः सुहृद्ग्रहा-
स्ते वीर्य्ययुक्ता यदि भावसिद्धिदाः ॥२०॥

तन्वादि बारह भावों में से जिस भाव का विचार करना अभीष्ट हो, उस भाव से तृतीय, षष्ठ व एकादश स्थान में पापग्रह हों तथा केन्द्र व त्रिकोण स्थानों में शुभग्रह हों और वे भावेश के मित्र हों तथा बलवान् हों, तब उस भाव के फल की सिद्धि होती है।

बली योगकारक ग्रह का फलोदय :

फलानि दृग्योगमुखोद्भवानि
यानीह तत्कर्त्तृनभोगमध्ये ।
ओजो घनं यस्य खगस्य तस्य
दायेऽत्र भुक्तौ किमु तत्फलं स्यात् ॥२१॥

अभी तक जितने भावसिद्धि के योग बताए गये हैं, उन दृष्टि और युति के आधार पर विभाजित योगों का कारक जो ग्रह सबसे अधिक बलवान् हो, उसी ग्रह की दशा या अन्तर्दशा के भोग के समय, तत्सम्बन्धित फल की प्राप्ति होती है।

टिप्पणी—कारक ग्रहों के फलकारी योग प्रायः दृष्टि, युति व स्थिति पर ही निर्भर करते हैं। दृष्टि व युति पर आधारित योगों में योग कारक ग्रहों का योगदान स्पष्टतया होता है। अतः कई योगकारक ग्रहों के द्वारा जब कोई एक भाव ही पुष्ट किया जाता हो तो उस समय तत्सम्बन्धी फल की प्राप्ति कब होगी ? इस सम्बन्ध में ग्रन्थकार ने कहा है कि उन समस्त योगकारक ग्रहों में जो सबसे अधिक बलवान् हो, उसी ग्रह की महादशा या अन्तर्दशा में फल प्राप्त होगा। इसी विषय में **जातकाभरण** में भी यही कहा गया है—

"एते हि योगाः कथिताः मुनीन्द्रैः सान्द्रं बलं यस्य नभश्चरस्य ।
कल्प्यं फलं तस्य च पाक काले, सुनिर्मला यस्य मतिस्तु तेन ॥"

"मुनीन्द्रों ने ये ग्रह योग वताये हैं, उनमें जिस ग्रह का खूब (सान्द्र) वल हो, उसी ग्रह की दशान्तर्दशा में निर्मल बुद्धि वाले विद्वानों को फलोदय समझना चाहिए।"

पूर्णदृष्टि कारक ग्रह का फल :

पूर्णेक्षया पश्यति यद्‌गृहं खगो
लग्नाद् गृहे यत्र च यद्‌गृहं भवेत्।
तत्तुल्यवर्षे फलमस्य लग्नतो-
ऽकान्तं समा द्वादश तद्वदग्रतः ॥२२।

जो ग्रह जिस स्थान को पूर्ण दृष्टि से देख रहा हो, वह स्थान लग्न से जितने घर आगे हो, उतने ही वर्ष की आयु में, उस ग्रह से सम्बन्धित फल की प्राप्ति समझनी चाहिए। व्यय स्थान तक वारह वर्ष होते हैं, तत्पश्चात् दूसरी आवृत्ति में चौवीस, तीसरी में छत्तीस तथा चौथी में अड़तालीस वर्ष हो जाएंगे। इसी क्रम से आगे गणना कर ग्रह का फलोदय जान लेना चाहिए।

टिप्पणी—यहां पर सुदर्शन पद्धति से फलोदय ज्ञान का प्रकार वताया गया है। सुदर्शन पद्धति में प्रत्येक वर्ष का दशेश जानने के लिए लग्नादि वारह भावों में प्रत्येक आवृत्ति में वारह-वारह आयु वर्षों की कल्पना करके वर्तमान वर्ष के भाव में स्थित राशीश को वर्ष का दशेश माना जाता है। उसी भाव को लग्न मानकर वर्तमान वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है। इस विषय में ग्रन्थकार ने अपने **ज्योतिस्तत्त्व** नामक ग्रन्थ में कहा है—

"आरभ्य जन्मोदयभं गताब्दाः शोभ्याः समाभ्योऽभिमताभिधाभ्यः।
तन्वादिषु द्वादशभावकेषु स्थितैर्नभोगैः सदसत्फलं हि॥"

"आयु के गताब्दों को लग्नादि वारह भावों में स्थापित कर ले। वर्तमान आयु वर्ष भाव में स्थित ग्रहों से शुभाशुभ फल कहे।"

ग्रह भागानुसार फल प्राप्ति :

यदा योगावयोरथविवृत्तौ योगकारिणोः।
तयोर्द्वयोश्चलः खेटः पृष्ठतोऽग्रेऽपि मन्दगः ॥२३॥

तयोर्द्वादशतुल्यांशान्तरे रूपं वियल्लेव।
खं रव्यंशे फलं चानुपातात्साध्यमिनांशकैः ॥२४॥

अग्रांशगे चले खेटे तत्रेष्टस्य विनाशकः।
तद्योगप्रदयोर्यत्र यदाऽप्येकं बली विधुः ॥२५॥

पश्येदुक्तलवैः स्थानाद्विशेषफलकृद्भवेत्।
दुःस्थानानि विना खेटाः पश्येयुर्निखिलालयान् ॥२६॥

उत्तमाः स्वगृहे तुङ्गे तत्राधीष्टगृहे समाः।
हीना इतरधा प्रोक्ता फलानां प्रापणे बुधैः ॥२७॥

योग कारक व अवयोग कारक दोनों ग्रहों के बीच में जो ग्रह मन्दगति हो वह शीघ्रगति ग्रह से अंशादि में अधिक हो तथा शीघ्रगति ग्रह अंशों में कम हो तथा उन दोनों के बीच अधिकाधिक बारह अंशों का अन्तर हो तो वे योगकारक ग्रह होंगे।

यदि दोनों योगकारक ग्रहों के अंश समान हों तो पूर्ण फल होता है। दोनों ग्रहों के अंशादि यदि द्वादशांशों के अन्तराल पर हों तो फल नहीं होता है।

यदि कहीं बीच में दोनों ग्रहों के अंशादि हों तो त्रैराशिक विधि से अनुपात द्वारा फल का अनुमान करना चाहिए।

यदि मन्दगति ग्रह से शीघ्रगति ग्रह आगे हो तो शुभ फल का नाश होता है।

यदि उक्त योगकारक ग्रहों में से किसी एक को भी बलवान् चन्द्रमा देखता हो यो विशेष फल की प्राप्ति होती है।

स्वराशिगत या उच्च राशिगत ग्रह यदि दुष्टस्थानों को छोड़कर शेष स्थानों को देखते हों, तो उत्तम फल प्राप्ति का योग होता है। अधिमित्र की राशि में होने पर मध्यम फलकारक तथा शत्रु या नीचराशि में हों तो अशुभ फलकारक होते हैं। यह फल प्राप्ति की विधि विद्वानों ने कही है।

टिप्पणी—यहां पर ताजिक शास्त्र के आधार पर ग्रहयोग के फल का विवेचन किया गया है। ताजिक शास्त्र में इक्कबाल, इन्दुवार, इत्थसाल आदि योगों का वर्णन आता है। ये समस्त योग ग्रहों (लग्नेश व कार्येश) की स्थिति विशेष से सम्पन्न होते हैं। जिसके विषय में

जिज्ञासा है, उस भाव की राशि का स्वामी कार्येश है। प्रस्तुत प्रसंग में इत्थसाल योग का आधार ग्रहण किया है। इत्थसाल योग में ग्रहों की दृष्टि होना आवश्यक है। शीघ्रगति ग्रह यदि मन्दगति ग्रह से पीछे थोड़े से ही अन्तर पर विद्यमान हो तो पूर्ण इत्थसाल होता है। यदि शीघ्रगति ग्रह पीछे रह कर दीप्तांशों के समान अन्तर पर हो तो भविष्यत् इत्थसाल होता है। इसके लिए शीघ्रगति ग्रह मन्दगति ग्रह से पिछली राशि में होना आवश्यक है। शीघ्रगति ग्रह का मन्दगति ग्रह से आगे रहना कार्यनाशक होता है।

उक्त योगों में इस योग का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है, तथापि इन्हें इत्थसाल योग नहीं कहा जा सकता है। सामान्यतः इस सिद्धान्त का आधार यह है कि कार्येश व लग्नेश का संयोग (अंशात्मक न कि कुण्डली में युति) कार्य-साधक होता है। माना कर्क लग्न की कुण्डली में धन सम्बन्धी विचार करना है तो लग्नेश चन्द्रमा तथा धनेश सूर्य होगा। यह सूर्य ही कार्येश है तथा चन्द्रमा की अपेक्षा मन्दगति है। अब दोनों के अंशों का अन्तर व राशि की स्थिति का विचार करना चाहिए। चन्द्रमा मिथुन राशि में सोलह अंशों का है तथा सूर्य मकर राशि में ग्यारह अंशों का है। यहां शीघ्रगति ग्रह मन्दगति से आगे है, लेकिन दोनों में दीप्तांश तुल्य या सामान्यतः बारह अंशों का अन्तर नहीं है, अतः सम्पूर्ण धन-नाश का योग नहीं है। **उत्तरकालामृत** में भी इसका उल्लेख किया गया है—

> **"योगस्याप्यवयोगजस्य विवृतौ तद्योगकर्त्रोर्द्वयोः**
> **मन्दोग्रेप्यथ पृष्ठतश्चलखगस्तद्द्वादशांशान्तरे।**
> **रूपं शून्यलवे भवेद्रवि (१२) लवे खं चानुपातात्फलम्,**
> **सूर्यांशैश्चलखेचरेऽग्रलवगे तत्रेष्टविध्वंसकः॥"**

"योगकारक व अवयोगकारक ग्रहों में से मन्दगति ग्रह से शीघ्र-गति ग्रह पीछे हो तथा उनका अन्तर १२ अंशों से अधिक कदापि न हो तो वे योगकारक होते हैं। यदि दोनों का अंशात्मक मान समान हो तो पूर्ण फल तथा बारह अंशों से कम हो तो अनुपात से फल जानना चाहिए। बारह अंशों तक यदि शीघ्रगति आगे चला गया है तो पूर्ण नाश योग होता है।"

चन्द्रमा की दृष्टि की विशेषता के विषय में भी वहां कहा गया है कि बलवान् चन्द्रमा की दृष्टि योगकारक ग्रहों को अतिरिक्त बल प्रदान करती है। लेकिन बारह अंशों से अधिक अन्तर वाले ग्रह के विषय में चन्द्र की दृष्टि भी लाभदायक नहीं होती है—

'तद्योगप्रदयोर्यदेकमपि वा चन्द्रः प्रपश्येद्बली,
स्थानात्प्रोक्तलवैर्विशेषफलकृत्षष्ठाष्टरिःफान्विना···॥'

"यदि योगकारक ग्रहों में से किसी एक को भी बली चन्द्रमा देखे तो विशेष फलोदय समझना चाहिए, लेकिन चन्द्रमा षष्ठ, अष्टम व द्वादश स्थानों में नहीं होना चाहिए।"

चिन्तयेच्चरमभादतीतक-
मेष्यमर्थभवनाद्विभावसोः ।
भाव्यतीतमुरगाधिनाथतः
साम्प्रतं हरिणलाञ्छनाभिधात् ॥२८॥

"जिस भाव का विचार कर रहे हों, तत्सम्बन्धी पदार्थों का भूत काल (फल प्राप्ति भूतकालिक) का विचार करना चाहिए। उस भाव से वर्तमान काल का तथा धन भाव से भविष्यत्काल का विचार करना चाहिए।"

ग्रहों के आधार पर क्रमशः राहु, चन्द्रमा व सूर्य से भूत, वर्तमान व भविष्य का विचार करना चाहिए।

टिप्पणी—आशय यह है कि जब किसी भाव का विचार कर रहे हों तो यह देखें कि भाव सम्बन्धी फल की प्राप्ति भूत में कैसी थी? वर्तमान में कैसी है, तथा भविष्यत्काल में कैसी रहेगी? तब उस भाव के साथ-साथ उससे पिछला व अगला भाव भी देखना चाहिए। पिछला भाव भूत काल का द्योतक होगा तथा अगला भाव भविष्यत्काल को बतायेगा। स्वाभाविक रूप से भाव को वर्तमान का प्रतिनिधि समझना चाहिए। एक स्थान पर कहा गया है—

'अतीतमन्तिमादेष्यं वित्तभात्प्रविलोकयेत् ।
राहोरतीतं रवितो भावि साम्प्रतमिन्दुतः ॥' इति

"(भाव से) द्वादश स्थान से अतीत, आगामी भाव से भविष्यत् का विचार करें। राहु से अतीत, सूर्य से भविष्य तथा चन्द्रमा से वर्तमान का विचार करें।"

हम समझते हैं कि जिज्ञासु की तीनों अवस्थाओं (बाल्य/किशोर, युवा तथा वृद्ध) का विचार क्रमशः व्ययस्थान, विचारणीय स्थान तथा धन स्थान से करना चाहिए। यदि भाव का द्वादश निर्बल है तो बाल्यकाल में अथवा कैशौर्य में व्यक्ति को तद्भाव सम्बन्धी फल की अल्पता रही है। यदि भाव स्वयं बलवान् है तो युवावस्था में अवश्य फल प्राप्ति होगी तथा धनस्थान के बलवान् होने पर प्रौढ़ या वृद्धावस्था में जाकर फल-लाभ होगा। फिर भी सामान्यतः भाव के बलाबल का प्रभाव सार्वकालिक समझना चाहिए।

व्रणकारक ग्रह से शरीर में व्रण-ज्ञान :

सदुष्कृतो द्वेष्यदयस्त्रिकस्थ-
स्तनुस्थितो वा व्रणकृच्छरीरे।
तद्भावगामीत्थमिनः क इन्दु-
रास्ये गलेऽस्रो हृदि विद्यमोंऽघ्रौ ॥२९॥
काव्योऽक्षिपृष्ठे धिषणस्तु नाभि-
मूले तदेर्म्मं कुरुतेऽधरेऽहिः।
साधेऽरिनाथे गगनेऽघदृष्टे
यदङ्गभेऽरुःप्रभवेत्तदङ्गे ॥३०॥

"त्रिकस्थानों में या लग्न में षष्ठेश हो और वह पापग्रहों से युति कर रहा हो तो शरीर में व्रण (चिन्ह) बनाता है।

यदि षष्ठेश सूर्य हो तो सिर में व्रण होता है, चन्द्रमा से मुख में, मंगल से कण्ठ में, बुध से हृदय में, गुरु से नाभि मूल में, शुक्र से नेत्र या पीठ में, शनि से पैर में तथा राहु से ओठ में व्रण समझना चाहिए।

दशम स्थान में, अंग विभाग के अनुसार, जिस अंग की राशि हो यदि वहां पाप युक्त वा दृष्ट षष्ठेश स्थित हो तो उस अंग में व्रण कारक होता है।"

टिप्पणी—षष्ठ स्थान रोग-स्थान होता है। पीछे बताया जा चुका है कि व्रण का विचार भी षष्ठ स्थान से ही किया जाता है। यही

कारण है कि षष्ठेश की तनु स्थान अर्थात् शरीर स्थान में स्थिति से घाव आदि का विचार करना यहां बताया गया है। ग्रह षष्ठेश होकर अलग-अलग अंगों में व्रण कारक होता है। ग्रहों के व्रण स्थानों के विषय में जो बताया गया है, वह **जातकालंकार** में **गणेशदैवज्ञ** ने भी बताया है—

> **"इत्थं तत्स्थानगामी शिरसि दिनमणिश्चानने शीतभानुः,**
> **कण्ठे भूमीतनूजो हृदि शशितनयो वाक्पतिर्नाभिमूले।**
> **नेत्रे पृष्ठे च शुक्रो दिनकरतनयः स्यात्पदे चाधरे चेत्**
> **केतुर्वा सैंहिकेय······।।"**

"सूर्य सिर में, चन्द्रमा मुख में, मंगल कण्ठ में, बुध हृदय में, बृहस्पति नाभिमूल में, शुक्र नेत्र व पीठ में, शनि पैर में, राहु या केतु ओष्ठ में व्रण कारक होते हैं।"

जातक पारिजात नामक ग्रन्थ के रचयिता ने ग्रहों के इन स्थानों को भिन्न प्रकार से माना है। उनके मतानुसार "सूर्य सिर में, चन्द्रमा मुख में, मंगल कण्ठ में, बुध नाभिमूल में, शुक्र नेत्रों में, राहु व केतु पेट में रोगों के कारक होते हैं और शनि वायु-विकार करता है। बृहस्पति नीरोगता का कारक है। यदि लग्नेश बुध की राशि (३-६) में स्थित होकर बुध से युत या दृष्ट हो तो गुप्त स्थानों में व्रण होता है।"

जातकपारिजातकारने बृहस्पति को नीरोगता का कारक माना है, लेकिन महर्षि पराशर ने कहा है कि यदि षष्ठेश से युत होकर गुरु षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो नाक से सम्बन्धित रोग होते हैं। राहु व केतु के व्रण-स्थानों के विषय में भी इनके विचारों में थोड़ा भेद है—

> **"गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे।**
> **शनिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत्।।"**

"(षष्ठेश के साथ यदि षष्ठ व अष्टम में) गुरु हो तो नाक में, शुक्र हो तो आंख में, शनि से पैर में तथा राहु-केतु से कुक्षि स्थान (पार्श्व) अथवा बाहूमूल (बगल) में रोग होता है।"

इस प्रसंग में व्रण से तात्पर्य रोग से ही लेना चाहिए। अंगों के विषय में भी विशेषतया वह अंग न लेकर अंग प्रदेश का ग्रहण करना चाहिए। जैसे चन्द्रमा से मुख रोगों का सम्बन्ध जोड़ा गया है, अतः

मुख द्वार से तात्पर्य न समझ कर चेहरा (मुख) भी अभीष्ट हो सकता है।

ग्रहों से मृत्यु-कारण विचार :

मृत्यूपगश्चेन्मिहिरोऽग्निनाऽब्ज-
स्तत्रम्बुना चन्द्रजनिर्ज्वरेण ।
धीमानविज्ञातरुजा क्षुधा भो-
ऽसृक्छस्त्रतो नैति यमस्तृषान्तम् ।।३१।।

"अष्टम में सूर्य हो तो अग्नि से, चन्द्र हो तो जल से, बुध हो तो ज्वरादि रोगों से गुरु हो तो अज्ञात रोग से, शुक्र हो तो भूख से, मंगल हो तो शस्त्र से, शनि हो तो प्यास से मृत्यु होती है।"

ग्रहों के मारक स्थान :

सूरिः सोदरगोस्तगः कुज इनोऽन्त्यस्थः कलेट् कालगः
कालः कायगतो भृगुर्भयगतोऽहिर्ज्ञानगो ज्ञोऽस्तगः ।
मृत्युस्थानमितीरितं दिविषदां तस्मिन्खलात्पेक्षिते
किं वा नीचसपत्नराशिसहिते किं दुर्बले दुःखभाक् ।।३२।।

"तीसरे स्थान में बृहस्पति हो तो वह मरण स्थान हो जाता है। इसी तरह सप्तम में मंगल, द्वादश में सूर्य, अष्टम में चन्द्रमा, लग्न में शनि, षष्ठ में शुक्र, नवम में राहु तथा सप्तम में बुध हो तो ये स्थान मृत्यु स्थान हो जाते हैं।

इन मृत्यु स्थानों में यदि पापग्रहों की दृष्टि या युति हो अथवा नीचराशिगत, शत्रुराशिगत व कमजोर ग्रह हों तो अत्यन्त कष्ट होता है।"

टिप्पणी—यदि उपर्युक्त ग्रह निर्दिष्ट स्थानों में हों तो उन स्थानों को भी मृत्यु स्थान (मारक स्थान) की तरह देखना चाहिए। इन स्थानों में उपर्युक्त ग्रहों की स्थिति से तो मारकत्व का आधान होता है तथा अन्य दृष्टि या युति कारक पाप या दुर्बल ग्रहों से कष्ट में वृद्धि होती है। **वैद्यनाथ** ने भी ऐसा ही कहा है—

भ्रातृ स्थान (३) गतो जीवो दारस्थान (७) गतः कुजः ।
तथा जन्मगतो मन्दो राहुः नवमराशिगः ।

चन्द्रो ऽष्टमगृहं यातः सूर्ये रिः फ (१२) गृहं गतः।
बुधः सप्तमभावस्थो भार्गवः शत्रु (६) राशिगः।
इत्येवं मरणस्थानं तस्मिन्पापयुतेऽथवा।
पापदृष्टेऽरिनीचस्थे दुर्बले दुःखमाप्नुयात्॥

"गुरु, मंगल, शनि, राहु, चन्द्र, सूर्य, बुध तथा शुक्र यदि क्रमशः (३-७-१-९-८-१२-७-६) स्थानों में हों तो ये मरण स्थान हैं। यदि इन स्थानों में नीच शत्रुगत पापी ग्रह हों या इन्हें देखते हों तो अपार कष्ट होता है।"

सप्तछिद्र ग्रह और मृत्यु का समय :

छिद्रग्रहा मृतिपयुङ् मृतिगो विनाश-
नाथाध्यरिर्मृतिपतिः खरपः स्युरेते।
रन्ध्रेक्षकोऽब्धिरसभागपतिर्य एषु
प्राणी खगो मरणमेति तदीयदाये॥३३॥

"अष्टमेश, अष्टमगत ग्रह, अष्टमेश का अधिशत्रु, जन्म लग्न से बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी, चौसठवें नवांश का स्वामी, अष्टम को देखने वाला ग्रह तथा अष्टमेश से युत ग्रह, ये सातों छिद्र ग्रह कहलाते हैं।

इन सातों में से जो सबसे अधिक बली हो, उसी की दशा में व्यक्ति की मृत्यु होती है।"

टिप्पणी—'छिद्र' कमी या अभाव को कहते हैं, जीवन के अभाव से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'छिद्र ग्रह' कहा गया है। इन सातों से ही व्यक्ति के निधन (मृत्यु) का विचार किया जाना चाहिए।

अष्टम स्थान मृत्यु स्थान है तथा भाव का विचार करते समय भावेश का विचार आवश्यक है। अतः अष्टम, अष्टमेश, अष्टमेश के साथ विद्यमान ग्रह तथा अष्टम स्थान द्रष्टा एवं अष्टमेश का अधिशत्रु ये पांच ग्रह सीधे तौर पर अष्टम स्थान से सम्बद्ध है। पीछे बताया गया है कि बाईसवां द्रेष्काण मृत्यु द्रेष्काण होता है तथा चौसठवां नवांश भी मृत्यु नवांश होता है। अतः इन्हें भी इस गण में सम्मिलित किया है। कारण यह है कि जन्म लग्न में जो द्रेष्काण विद्यमान होता है उससे बाईसवां द्रेष्काण आठवें स्थान में पड़ता है तथा चौसठवां नवांश भी

आठवें स्थान में होता है। सीधे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रायः अष्टम स्थान में जो द्रेष्काण व नवांश विद्यमान हो उसका स्वामी भी सप्तग्रहों में सम्मिलित किया जाएगा। **वैद्यनाथ** ने भी यही सात छिद्र ग्रह स्वीकार किए हैं। मृत्यु के समय के विषय में उसका स्पष्ट कथन है—

'...तेषां मध्ये बली यस्तु तस्य दाये मृतिं वदेत्।
तत्तद्भावाद्व्ययस्थस्य तद् भावाधीश्वरस्य वा।
वीर्योपेतस्य खेटस्य पाके मृत्युर्न संशयः॥'

"ये सप्त छिद्र ग्रह जहां स्थित हों, उनके व्ययस्थान में विद्यमान ग्रह अथवा उन्हीं स्थानों के स्वामी ग्रहों अथवा इन सप्त छिद्र ग्रहों में से जो सर्वाधिक बलवान् हो उसकी दशान्तर्दशा में निधन निःसन्देह होता है।"

उपर्युक्त विषय में **'फलदीपिकाकार'** के कथन में थोड़ी भिन्नता है। वे व्ययस्थानों के स्वामी ग्रहों को सम्मिलित करते हैं न कि सप्त छिद्र ग्रह जहां स्थित हों उन स्थानों के स्वामी ग्रहों को। उनका कथन द्रष्टव्य है—

"तत्तद्भावाद् व्ययस्थस्य तद्भाव व्ययपस्य च।
वीर्यहीनस्य खेटस्य पाके मृत्युमवाप्नुयात्॥"

"उन उन स्थानों से बारहवें स्थानों में स्थित ग्रह तथा द्वादशेशों में से जो सबसे निर्बल हो, उसी की दशा में मृत्यु होवे।"

भावनाशक ग्रह की दशा का फल :

तत्तद्भावात्पञ्चतानाथजाति-
त्र्यंशाधीशा दुर्बला भावगेहात्।
जायाजन्यारातिभावोपगास्ते
स्वीये दाये भावनाशप्रदाः स्युः ॥३४॥

"जिस भाव का विचार करना अभीष्ट हो, उस स्थान से अष्टम स्थान के स्वामी, बाईसवें द्रेष्काण के स्वामी तथा दुर्बल ग्रह यदि भाव से षष्ठ, सप्तम व अष्टम में हों तो अपनी दशा में भाव का नाश करते हैं।"

टिप्पणी—लग्न, चन्द्र या सूर्य से षष्ठ, सप्तम व अष्टम स्थानों में यदि शुभ बलवान् ग्रह हों तो जातकविद् लोगों ने उसे 'अधियोग' कहा है, जो प्रबल राजयोग है। इसके विपरीत यदि उक्त स्थानों में पाप ग्रह, विशेष रूप से अष्टमेश, मृत्यु द्रेष्काणेश तथा निर्बल ग्रह होंगे तो भाव की हानि स्वाभाविक ही है। **फलदीपिका** में भी कहा गया है—

"तत्तद्भावपराभवेश्वरखरद्रेक्काणपा दुर्बलाः।
भावार्य्यष्टमकामगा निजदशायां भावनाशप्रदाः॥"

'दुर्बल मृत्यु द्रेष्काणेश व अष्टमेश अपनी दशा में भाव नाश करते हैं।'

गोचर से भावहानि काल-ज्ञान :

भावतस्तनयभाग्यभावगे
भानवे वदतु भावनाशनम्।
भावनाथगभतस्तपोऽङ्गजे
स्यान्मृतिर्गतवतीन्द्रमंत्रिणि ॥३५॥

"जिस भाव का विचार करना हो, उस भाव से पंचम व नवम त्रिकोण स्थानों में जब गोचर में शनि आता है तो भाव का नाश होगा।

भाव के स्वामी की अधिष्ठित राशि से त्रिकोण स्थानों में जब गोचर से बृहस्पति आता है तो भाव की मृत्यु होती है, अर्थात् समस्त फल का नाश होता है।"

टिप्पणी—यदि धन भाव का विचार करना हो तो उससे पंचम या नवम स्थान में जब शनि का चार होगा तो भाव का नाश होगा। आशय यह है कि जन्म समय षष्ठ व दशम भावों में स्थित राशि में जब शनि का संक्रमण होगा, तब धन भावस्थ राशि से पंचम व नवम होने के कारण भाव-नाशक योग होगा। इसी तरह सब भावों में देख लेना चाहिए।

दूसरा भाव-नाश योग बृहस्पति से होता है। जब बृहस्पति भावेश की अधिष्ठित राशि से नवम पंचम स्थानों में आएगा, तब उस भाव की मृत्यु होती है। उस भाव से सम्बन्धित फल की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। **वैद्यनाथ** ने कहा है—

"भाव त्रिकोणगे मन्दे भावनाशं वदेद्बुधः।
भावाधिपतिकोणे वा गुरौ प्राप्ते मृतिर्भवेत्॥"

"भाव से त्रिकोण में शनि आने पर भाव का नाश विद्वानों को बताना चाहिए। भावेश से त्रिकोण में बृहस्पति होने पर भाव की मृत्यु होती है।"

दशा के अनुसार भाव-हानि :

तद्भावपस्याध्यरिखेचरो यो
रेखाविहीनर्क्षगतो ग्रहः सः।
तदीयदायेऽङ्गगृहादिकानां
नाशं ध्रुवं दैवविदो वदन्ति॥३६॥

तत्तद्भावद्रव्यदाराधिपत्योः
किं तद्दृष्टोपेततत्कारकाणाम्।
दायेषूतान्तर्दशास्वत्ययः स्या-
त्तत्तद्भवानां वदेद्विज्ञ एवम्॥३७॥

"विचारणीय भाव के स्वामी ग्रह का अधिशत्रु यदि अष्टक वर्ग में शुभ रेखा रहित राशि में स्थित हो तो उसकी दशा आने पर भाव का नाश होता है।"

टिप्पणी—जिस भाव का विचार किया जाए, उस भाव के अधिपति के अधिशत्रु यदि रेखाहीन हों तो उनकी दशा में तत्तद् भावों का नाश होगा। आशय यह है कि लग्नेश का अधिशत्रु यदि उपर्युक्त स्थिति में हो तो लग्न का नाश, उसकी दशा में होगा। इसी तरह पंचमेश के अधिशत्रु (रेखाहीन) की दशा में पंचम भाव का नाश होना चाहिए।

यह बात स्पष्ट हुई कि लग्नेश के अधिशत्रु की दशा में लग्न का नाश, धनेश के अधिशत्रु की दशा में धन स्थान का नाश समझना चाहिए।

नैधनत्रिलवभागनाथग-
राशिगे यदि दिनेशनन्दने।

किं तदीशनवभागराशिगे
तद्वदेव भवतीह जन्मिनाम् ।।३८।।

"जिस भाव का विचार करना है, उस भाव से द्वितीयेश तथा सप्तमेश, इनसे दृष्ट व युत ग्रहों तथा कारक ग्रहों की दशा में या अन्तर्दशा में विचारणीय भाव के फल का नाश होना चाहिए।"

टिप्पणी—द्वितीय व सप्तम भावों को मारक भाव तथा इनके स्वामियों को मारकेश कहा जाता है। यही कारण है कि जिस भाव का विचार किया जाए, उससे द्वितीय व सप्तम यानि मारकेश स्थानों का भी विचार करना चाहिए, क्योंकि इन भावों का या भावाधिपतियों का सम्पर्क जब भाव (विचारणीय) से होगा तो भाव हानि होगी। इसीलिए ग्रन्थकार ने द्वितीयेश व सप्तमेश की दशान्तर्दशा में तथा इनसे दृष्ट व युक्त ग्रहों तथा इनके द्वितीय सप्तम भावों के कारक ग्रहों की दशान्तर्दशा में भी भाव का नाश होता है। **वैद्यनाथ** ने भी कहा है—

"तत्तद्भावार्थ कामेश दशास्वन्तर्दशासु च।
तत्तद्भावविनाशः स्यात्तद्युवतेक्षितकारकैः ।।"

"भाव के द्वितीयेश व सप्तमेश तथा इनसे युक्त दृष्ट ग्रहों तथा कारक की दशान्तर्दशा में भाव का नाश होता है।"

जन्म लग्न से अष्टम स्थान में जो द्रेष्काण हो, उसका स्वामी जिस राशि या नवांश में हो, उस राशि में जब गोचर से शनि आए तो प्राणियों का नाश होता है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है।

टिप्पणी—अष्टम स्थान में विद्यमान द्रेष्काण मृत्यु द्रेष्काण बताया गया है। इस द्रेष्काणेश द्वारा अधिष्ठित राशि या नवांश में शनि के आने से मृत्यु सम्भव है। **वैद्यनाथ** भी इस कथन से सहमत है—

"अष्टमस्य त्रिभागाशंपति स्थितगृहं शनौ।
तदीश नवमांशर्क्षं गते वा मरणं भवेत् ।।"

"अष्टम स्थानस्थ द्रेष्काण का स्वामी जिस राशि या नवांश में जन्म-समय स्थित हो, उसमें गोचर से शनि आने पर मृत्यु हो जाती है।"

तत्तद्भावायुर्गृहेशस्थितांशे
तत्कोणे वान्त्येशगर्क्षांश ऐनौ।
यद्वा बाधाभावपस्थर्क्षभागा-
प्ते तत्तद्भावात्ययो गोचरेण ॥३९॥

"विचारणीय भाव से अष्टम स्थान का स्वामी जिस नवांश में हो, उसमें अथवा पहले बताए गए बाधा स्थानों (बाईसवें द्रेष्काण, द्वितीय सप्तम आदि) में जब गोचर से शनि आए तो सम्बन्धित भावों के फल का नाश होता है।"

मृत्यु समय का ज्ञान :

याम्येशयाम्योपगयाम्यवीक्षक-
याम्यत्रिभागेशयमस्थराशिपाः ।
ते कष्टदा स्युर्विबलोऽपि तेषु यः।
स्वकीयदाये स विनाशकारकः ॥४०॥

"अष्टम भाव का स्वामी, अष्टम में विद्यमान ग्रह, अष्टम को देखने वाले ग्रह, अष्टम भाव के द्रेष्काण का स्वामी और शनि की अधिष्ठित राशि का स्वामी, ये सब कष्टकारक होते हैं। इनमें से जो सबसे निर्बल हो, उसकी दशा में मृत्यु होती है।"

टिप्पणी—इस श्लोक में ग्रन्थकार ने इसी प्रकरण के श्लोक ३३ की पुनरावृत्ति ही कर दी है, अतः वहीं पर विशेषार्थ देख लें।

तत्तद्गेहान्मंत्रिगस्याभ्रगस्य
तस्माद्भावाद्दामनस्याधिपस्य ।
सारोनस्याकाशवासस्य दाये
जातो जन्मी पञ्चतामाप्नुयात्सः ॥४१॥

"जिस भाव का विचार करना हो, उससे व्यय स्थान में स्थित ग्रह अथवा व्ययेश मे से जो निर्बल हो उसकी दशा में मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है।"

टिप्पणी—इसी प्रकरण के श्लोक ३३ में बताए गए सप्तच्छिद्र ग्रहों की स्थित राशियों के विषय में उपर्युक्त बात कही गई थी।

मंत्रेश्वर के कथन का उद्धरण भी सप्तच्छिद्र ग्रहों की अधिष्ठित राशियों के विषय में ही था। **जातक पारिजात** में भी थोड़े से पाठ भेद से अंशत: उक्त अर्थ की ही पुष्टि होती है। (देखें श्लोक ३३)

तत्तद्भावाद्विनाशेश: षडायु:कामभावगा:।
जातित्र्यंशेट् च भावघ्ना वीर्य्योना: स्वदशासु ते ।।४२।।

"विचारणीय भाव से अष्टम स्थान का स्वामी तथा भाव से षष्ठ, सप्तम, अष्टम स्थानों में स्थित ग्रह एवं भाव से बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी, ये सब यदि निर्बल हों तो अपनी दशा में भाव की हानि करते हैं।"

लग्न व चन्द्र से भाव-विचार :

राश्यो: क्षपेशोदययो: क्षयेशौ
विनाशभावस्थ तदीक्षकौ च।
क्रूरत्रिभागेड् गुलिकर्क्षनाथ:
पतङ्गजस्तद्युतभागभेशा: ।।४३।।

सिंहीसुतश्चैषु सुदुर्बलो यो
भावेऽनभीष्टे स्थित उद्भवे स:।
उपेतदृष्टो दहनैर्विहङ्गै:
कुर्य्यात्स्वदायेऽपचितिं गृहस्य ।।४४।।

"चन्द्र से और लग्न से जो अष्टम स्थान हो, उसके स्वामी, उसमें स्थित ग्रह, उसे देखने वाले ग्रह, बाईसवें द्रेष्काण के स्वामी, गुलिक राशिपति, शनि तथा इन सब ग्रहों से युक्त नवांश तथा राशियों के स्वामी और राहु, इन सब में से जो ग्रह अति निर्बल होकर षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थानों में स्थित हो और पाप ग्रह से युत वा दृष्ट हो तो उसकी दशा में भाव की हानि होती है।"

टिप्पणी—आशय है कि पीछे जो सप्तच्छिद्रादि ग्रह बताए गए थे, उनका विचार चन्द्र लग्न व जन्म लग्न दोनों से करना चाहिए। (देखें श्लोक ३३)

पापग्रह की दशा में फलोदय काल :

दशाप्रवेशे निजतुङ्गपूर्व-
जन्यं फलं स्यात्कलुषग्रहस्य ।
भावादिसञ्जातफलं दशान्तः
फलं दशान्ते फलतीक्षणोत्थम् ॥४५॥

"पापी ग्रह जब उच्च राशि गत, मूल त्रिकोण गत या स्वक्षेत्र गत हो तो उसका फल उसकी दशा के प्रवेश काल (प्रारम्भ) में ही मिलता है।

भाव में स्थिति आदि से उत्पन्न होने वाला भाव सम्बन्धी फल दशा के बीच में मिलता है।

पाप ग्रह की दृष्टि से उत्पन्न फल दशा के अन्त में प्राप्त होता है।"

शुभ ग्रहों की दशा में फलोदय काल :

पाकादिमे भावभवं फलं य-
न्मध्ये दशाया गृहधामजातम् ।
दशावसाने फलमीक्षणोत्थं
विज्ञेयमार्य्यैः सकलोत्तमानाम् ॥४६॥

"समस्त शुभ ग्रह भावजन्य फल को अपनी दशा के प्रारम्भ में फलित करते हैं, राशि व स्थान आदि (उच्च, मूल त्रिकोण व स्वराशियों) से उत्पन्न फल इनकी दशा के मध्य में मिलता है।

दृष्टिजन्य फल की प्राप्ति दशा के आखिरी हिस्से में होती है, ऐसा विद्वानों को समझना चाहिए।"

टिप्पणी—पापी ग्रह दशा के आरम्भ में राशिजनित फल देते हैं तथा मध्य में भावजनित तथा अन्त में दृष्टिजनित फल देते हैं। इसके विपरीत शुभ ग्रह भावजन्य फल दशा के प्रारम्भ में देते हैं तथा राशिजन्य दशा के मध्य में। दशा के अन्त में शुभ ग्रह भी पाप ग्रहों की तरह दृष्टिजनित फल देते हैं। **वैद्यनाथ** ने भी कहा है—

**"पाकस्यादौ भावजन्यं शुभानां तत्तद्राशिस्थानजं पाकमध्ये ।
दायस्यान्ते दृष्टिसंजातमेवं सर्वे तारापाकभेदं वदन्ति ।।"**

"दशादि में भावजन्य, दशा मध्य में राशि जन्य तथा दशान्त में दृष्टिजन्य फल शुभ ग्रह प्रदान करते हैं। ऐसा सभी ने दशा में फल पाक के विषय में माना है।"

गोचरगत ग्रह का फलोदय काल :

**भादिगौ भगकुजौ भपेनजा-
वन्त्यगौ निगदिनौ फलप्रदौ ।
मध्यगौ मद्यवमंत्रिभार्गवौ
सर्वदा स्वफलः सुधांशुजः ।।४७।।**

"सूर्य व मंगल राशि के आरम्भ में ही अपना फल देते हैं। चन्द्र व शनि राशि के अन्त में फलित होते हैं। गुरु व शुक्र राशि के मध्य में फलित होते हैं। बुध सदा आदि से अन्त तक फल देता है।"

टिप्पणी—प्रत्येक ग्रह अपने शील स्वभाव व व्यवस्था के अनुसार फल देता है। राशि के आदि मध्यान्त क्रमशः तीनों द्रेष्काण माने जाते हैं। लेकिन हम समझते हैं कि आदि व अन्त के ६-६ अंशों के तुल्य बाल व वृद्धावस्था को छोड़कर, शेष बचे १८ अंशों में ही यह व्यवस्था समझनी चाहिए। अतः राशि का आदि ६ से १२ अंशों तक, मध्य १३ से १८ अंशों तक तथा अन्त १९ से २४ अंशों तक मानकर चलना चाहिए। कारण यह है कि बाल व वृद्ध गृह प्रायः अपना फल देने में असमर्थ पाए जाते हैं। इस गोचर फलदान की अवधि के विषय में **रामदैवज्ञ** का भी कथन है—

**"राश्यादिगौ रविकुजौ, फलदौ सितेज्यौ,
मध्ये सदा शशिसुतश्चरमेऽब्जमन्दौ ।।"**

"राशि के आदि में रवि व मंगल, मध्य में बृहस्पति व शुक्र तथा अन्त में शनि व चन्द्र फल देते हैं। बुध सदा फलदायक है।"

लग्नेश व षष्ठेश का विशेष विचार :

> पौरारातिपयोर्युतौ पुरपतेर्द्वेष्ये यदा दुर्बले ,
> वैरी तद्वशगो विपर्यय इहातस्त्वन्यथाऽरिः पुरेट् ।
> यद्भावाधिपतेरुतारिमृतिगस्तत्कालशत्रोर्वशात्
> स्पर्द्धां तेन सहादिशेत्मरियुतौ चेन्मित्रतां गोचरे ।।४८।।

"लग्नेश व षष्ठेश यदि एकत्र हों तथा लग्नेश की अपेक्षा षष्ठेश अल्पबली हो तो मनुष्य शत्रुओं को वश में कर लेता है।

यदि विपरीत स्थिति हो, अर्थात् षष्ठेश अपेक्षाकृत बली हो तो मनुष्य स्वयं शत्रुओं के वश में हो जाता है।

लग्नेश जिस भाव के स्वामी का शत्रु हो तव गोचर से यदि वह षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो उतनी अवधि तक उस भाव के सम्बन्धियों से शत्रुभाव होता है।

इसके विपरीत लग्नेश जिन भावेशों का मित्र हो, उनके साथ गोचर में जब-जब युति होगी, तव तब उन भावों के विषय में मैत्री होती है।"

टिप्पणी—आशय यह है कि लग्नेश व षष्ठेश की युति में जो बलवान् होगा, वही अधिक प्रभावशाली होगा। शत्रुभावेश बली होगा तो मनुष्य शत्रु प्रभाव में आ जाएगा। यदि लग्नेश बली होगा तो मनुष्य शत्रुओं को वश में कर लेगा।

इसी तरह लग्नेश जिस भावेश का शत्रु होगा उस भाव के साथ तब वैर होगा जब लग्नेश गोचर में जन्म राशि से उस भाव की राशि से षष्ठ अष्टम आएगा। इसी प्रकार मित्रों से मैत्री योग होता है। यहां पर शत्रुता व मैत्री तात्कालिक होती है। जब तक ग्रहों का उक्त योग है तभी तक उपर्युक्त फल होगा।

व्ययेश के आधार पर भाव-नाश का योग :

> स्वामी यस्य गृहस्य दुःखगृहगः संस्थोऽकपो यत्र तद्
> भावस्य ह्यनुरूपवस्तुन इहान्तः कीर्त्तितः कोविदैः।
> यद्भावाधिपति रिपुस्थलगतो यद्भावगो वैरिपो
> यदभावप्रभुणान्वितो जनुषि ते भावा इयुः शत्रुताम् ।।४९।।

"जिस भाव का स्वामी व्यय स्थान में स्थित हो अथवा व्ययेश जिस स्थान में स्थित हो उस भाव की हानि करता है।

इसी तरह जिस भाव का स्वामी षष्ठ स्थान में हो अथवा षष्ठेश जिस भाव में हो, उस स्थान में परस्पर शत्रुता होती है।"

टिप्पणी—व्यय स्थान को दुःख स्थान कहा गया है, अतः जिस भाव का स्वामी दुःखगत होगा अथवा जिस स्थान में व्ययेश होगा, उस स्थान की हानि करेगा।

षष्ठेश जहां होगा अथवा षष्ठ स्थान में जो भावेश होगा उन दोनों भावों में शत्रुता स्वाभाविक है। कहा गया है—

"व्ययस्थितो यद्भावेशो व्ययेशो यत्र तिष्ठति।
तस्य भावानुरूपस्य वस्तुनो नाशमादिशेत् ॥"

"जो भावेश व्ययगत है तथा व्ययेश जहां है वहां की वस्तुओं का नाश समझना चाहिए।"

एक ग्रह के दो विरोधी फलों की व्यवस्था :

विहङ्गस्यैकस्यैव समफलयोर्जन्मनि नृणां
विरोधे नाशः स्याद्यदि यदधिकं पच्यत इह ।
तदन्यः खेटो नो इतरफलकं हन्ति सदृशं
खगाः सर्वेदद्युर्निजनिजदशायां निजफलम् ॥५०॥

"प्रत्येक ग्रह अपने शुभ या अशुभ फल को अपनी दशा में भी देता है। यदि एक ही ग्रह पूर्वोक्त नियमों के आधार पर परस्पर विरोधी फल देने वाला हो तो जो फल मात्रा में अधिक होगा, उसी की प्राप्ति होगी तथा थोड़े फल का नाश हो जाएगा।

यदि दो अलग ग्रहों द्वारा विरोधी फल संकेतित हो रहे हों तो वहां पर दोनों प्रकार के फल का भोग होगा। यह स्थिति समान मात्रा वाला फल होने पर भी लागू होगी। कारण यह है कि सभी ग्रह अपनी दशा में अपना फल अवश्य देते हैं।"

टिप्पणी—सामान्यतः ग्रह अपनी दशा में फलित होते हैं, लेकिन जब एक ही ग्रह शुभ व अशुभ फल देने वाला सिद्ध होता है तब जो फल

कम होता है, अर्थात् जिस फल का कारण कमजोर है, उस फल का नाश हो जाता है। आशय यह है कि अधिक फल के सामने थोड़ा फल उसी में समा जाता है। जैसे एक मुट्ठी गेहूं टनों चावल के ढेर में मिल जाने पर भी अपना अस्तित्त्व नहीं जता पाते, वैसे ही थोड़ा फल भी नगण्य हो जाता है।

यह बात दो अलग ग्रहों पर लागू नहीं होती। यदि दो अलग ग्रह समान मात्रा का विरोधी फल देने वाले प्रतीत हो रहे हों तो उनके दोनों फल प्रकारों की प्राप्ति उनकी दशा में होगी। **श्री वराह** ने भी कहा है—

"एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे,
नाशं वदेद् यदधिकं परिपच्यते तत् ॥"

"यदि एक ही ग्रह का परस्पर विरोधी फल हो तो उसमें से अधिक फल प्राप्त होता है तथा अल्प फल का नाश समझना चाहिए।"

अनेक फलों के समागम की व्यवस्था :

सङ्गतिः खचरचारनिरुक्ता-
नेहसां किल यदा प्रचुराणाम्।
तत्फलं तदनुकूलनिरुक्त-
दायभुक्तिषु वदेत्फलितज्ञः ॥५१॥

"यदि ग्रह-गोचर के अनुसार अनेक फलों का समागम एक ही कालखण्ड में हो रहा हो तो अनुकूल दशा व अन्तर्दशा में उस की प्राप्ति समझनी चाहिए।"

टिप्पणी—यदि पूर्वोक्त नियमों के अनुसार अनेक ग्रहों का फल एक ही समय में फलित होना निर्णीत हो रहा हो तो हमें उन विभिन्न फलों का लाभ उन-उन ग्रहों की अन्तर्दशा व प्रत्यन्तर्दशा के सूक्ष्म विश्लेषण के आधार पर जानना चाहिए। आशय यह है कि ऐसी अवस्था में गोचर की अपेक्षा दशा व अन्तर्दशादि को अपेक्षाकृत बलवान् समझना चाहिए। **जातकादेशमार्ग** में कहा गया है—

"ग्रहचारोक्तकालानां बहूनां संगतिर्यदा।
तदा तदनुकूलोक्तदशादौ तत्फलं वदेत् ॥"

"ग्रह चार के अनुसार यदि बहुत से कालों की संगति होती हो तो फल के अनुकूल दशा व अन्तर्दशादि में फल योग बताना चाहिए।"

यज्जातकेषु द्रविणं प्रदिष्टं
या कर्मवार्त्ता कथिता ग्रहस्य।
आलोकयोगोद्भवभावजं त-
त्सर्वं कृतिन्योजय तद्दशायाम् ॥५२॥

"जातक ग्रन्थों में ग्रहों के जो द्रव्य, आजीविका, वर्ण, स्वभाव, दृष्टि तथा योग आदि के फल कहे गए हैं, वे सब फल उन ग्रहों की दशान्तर्दशा में घटित होते हैं। ऐसा बुद्धिमान् लोग स्वयं विचार कर लें।"

टिप्पणी—होराशास्त्र के आचार्यों ने ग्रहों के सम्बन्धजन्य, भावजन्य, स्वभावजन्य आदि अनेक फलों का निरूपण किया है। सामान्यतः उन ग्रहों के समस्त शुभ या अशुभ फल की प्राप्ति उन-उन ग्रहों के दशा काल में बतानी चाहिए। **श्री वराह** ने भी कहा है—

"संज्ञाध्याये यस्य यद्द्रव्यमुक्तं······
······तत्तत्सर्वं यस्य योज्यं दशायाम् ॥"

'संज्ञाध्याय में जो ग्रहों के द्रव्य, आजीविका, भाव, दृष्टि व युति आदि के फल बताए गए हैं, उन्हें उन ग्रहों की दशा में घटित होता हुआ समझना चाहिए।"

यह 'प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में भावफल कालबोध प्रकरण समाप्त हुआ।

८ | प्रकीर्ण प्रकरण

भावेशों के सम्बन्ध का फल :

> योगे तनूधनपयोर्बहुलाभयोगः
> कोशानुजालयपयोर्नरपालभृत्य ।
> दुश्चिक्यबान्धवपयोः पृतनाधिनाथः
> पातालपञ्चमपयोर्मनृपतेः प्रधानः ॥१॥
>
> पुत्रारिपालयुजि दारुणकर्म्मकर्त्ता
> द्वेष्याङ्गनागृहपयोर्युजि राजयोगः ।
> चित्तोत्थनैधनपयोः प्रमदाविपत्ति-
> र्दिष्टान्तविध्यधिभुवोर्युजि भाग्यहानिः ॥२॥
>
> युज्यङ्कवंशभवनाधिभुवोर्नृपालो
> व्यापारलाभधवयोर्वसुधावसुः स्यात् ।
> प्राप्तिव्ययेशयुजि चेदृणतो व्ययोऽस्य
> योगो व्ययोदयपयो जननेऽर्थहानिः ॥३॥

"लग्नेश और द्वितीयेश का यदि योग (सम्बन्ध) हो तो बहुत लाभ होता है।

द्वितीयेश व तृतीयेश के सम्बन्ध से व्यक्ति राजपुरुष (राजसेवक) होता है। तृतीयेश व चतुर्थेश का योग होने पर सेनापति, चतुर्थेश व पंचमेश का योग होने पर राजमंत्री, पंचमेश व षष्ठेश का सम्बन्ध होने पर भयंकर काम करने वाला, षष्ठेश व सप्तमेश का योग होने पर राजयोग, सप्तमेश व अष्टमेश का योग होने पर स्त्री हानि, अष्टमेश, नवमेश का योग होने पर भाग्य हानि, नवमेश व दशमेश का योग होने पर राजपद, दशमेश व एकादशेश का योग होने पर धन-सम्पत्ति वाला, एकादशेश व द्वादशेश का योग होने पर कर्जदार और व्ययेश तथा लग्नेश का योग होने पर धन-हानि होती है।"

टिप्पणी—इन योगों में योग शब्द से तात्पर्य केवल एक स्थान पर स्थिति से ही नहीं है, अपितु पीछे बताए गए चारों सम्बन्धों के बलाबल के अनुपात से उक्त फलयोग कहना चाहिए।

लग्नेश व अन्य भावेशों के योग का फल :

द्रव्येऽङ्गपेऽङ्गे धनपे धनाढ्यो
भोगी बली पुण्यकरः स्वमत्याः।
आचारवित्सोदरपेऽङ्गमाप्ते
शौर्य्येऽङ्पे क्षीणबलो नृपार्च्यः ।।४।।

पक्षेण मातुः सहितः सुबन्धुः
कल्याणकृत्स्वीयकुलोद्भवानाम् ।
कल्पे जलेशे जलगेऽङ्पाले
भूपालकार्ये सरलोपलब्धिः ।।५।।

तातस्य शिष्ट्या सहितः क्षमावान्
स्वकीयपक्षो गुरुरुत्तमानाम्।
मतेर्विभौ मूर्त्तिगते धनेशे
मतौ मनस्वी निजवंशबुद्धः ।।६।।

ज्ञानी च विद्याभरणश्च माना-
सक्तः प्रजातः प्रथमेश्यरातौ।
कायेऽरिपे द्रोहयुतः सवित्तः
संग्रह्यरुक् स्याद्बलवाञ्चछरीरे ।।७।।

यदि लग्नेश धन स्थान में तथा धनेश लग्न स्थान में हो तो व्यक्ति धनवान्, भोगी, शक्तिमान्, पुण्य विचारों वाला तथा अपनी बुद्धि से आचरण करने वाला होता है।

यदि लग्नेश तृतीय स्थान में तथा तृतीयेश लग्न में हो तो व्यक्ति अल्पबली, राजमान्य, मातृपक्ष से सहायता पाने वाला, उत्तम बन्धु-बान्धवों से युक्त तथा अपने वंश को प्रसिद्धि व सुख देने वाला होता है।

लग्न में चतुर्थेश तथा चतुर्थ में लग्नेश हो तो व्यक्ति राज कार्यों में सरलता से कार्य करने वाला, पिता की आज्ञा मानने वाला, क्षमा भावना से युक्त, अपनी बात का पालन करने वाला, सज्जनों का भी मार्गदर्शक या सज्जन श्रेष्ठ होता है।

पंचमेश लग्न में तथा पंचम में लग्नेश हो तो व्यक्ति निर्मल मन व बुद्धि वाला, अपने कुल में सबसे अधिक मान्यता प्राप्त, ज्ञानी, विद्यावान् तथा स्वाभिमानी होता है।

लग्न में षष्ठेश तथा षष्ठ में लग्नेश हो तो बुरा चाहने वाला, विद्रोही, चीजें इकट्ठी करने वाला, धनवान् तथा नीरोग, अतः बलवान् होता है।

टिप्पणी—यहां लग्नेश व अन्य भावेशों के स्थान सम्बन्ध के आधार पर फलाफल बताया गया है। लग्न स्थान, आत्म स्थान व शरीर स्थान होने के कारण जिस भावेश के साथ योग करेगा, उस भाव से सम्बन्धित फल की प्राप्ति व्यक्ति को करवाता है। इस विषय में **जातकालंकार** में विशेष रूप से विचार किया गया है। लग्नेश व धनेश के स्थान सम्बन्ध के विषय में कहा गया है—

"लग्नाधीशेऽर्थगे चेद् धनभवनपतौ लग्नयातेऽर्थवान् स्यात्,
बुध्याचार प्रवीणः परमसुकृत्कृत्सारभृद् भोगशीलः...।"

"लग्नेश धन में तथा धनेश लग्न में होने पर जातक धनी, बुद्धि से आचरण करने वाला, धार्मिक, अच्छे कार्य करने वाला, सारवान् तथा भोगी होता है।"

इसी तरह ग्रन्थकार द्वारा निर्दिष्ट किए गए फल से **जातकालंकारकर्त्ता** अक्षरशः सहमत है। यही स्थिति अन्य भावेशों के साथ भी है।

मारेऽङ्गेशे मारपे मूर्त्तियाते
योषालोलस्तातपादानुरागी।
जातो जन्तुः श्यालकस्यानुजीवी
कालेशेऽङ्गे कालगे कल्पपाले ॥८॥

द्यूते बुद्धिश्चौर्य्यसक्तश्च शूरो
लोकेशाद्वा लोकतः कालमेति।

गात्राधीशे धर्म्मगे धर्म्मपेऽङ्गे
धर्म्मासक्तो भूपमान्यो विदेशी ॥९॥
रवे कल्पेशेऽङ्गेखपे काश्यपीशो
लाभे रूपे स्यात्प्रसिद्धोऽर्थनाथः ।
लाभेशेऽङ्गे लाभगे लग्नपाले
भूपो दीर्घायुः शुभेनान्विते सन् ॥१०॥

स्यात्सत्कर्माऽथो अपाये पुरेशे
ऽपायेशेऽङ्गेऽनूनकारिर्धियोनः ।
क्षुद्रोऽतीव द्रव्यनाशी विलोलो-
ऽङ्गेशे साच्छे पूजितः पार्थिवेन्द्रैः ॥११॥

"सप्तम भाव में लग्नेश तथा लग्न में सप्तमेश हो तो व्यक्ति स्त्रियों के सम्बन्ध में बहुत चंचल मन वाला, पिता की सेवा में रत रहने वाला तथा पत्नी के भाई (साले) की सेवा करने वाला होता है।

अष्टम में लग्नेश तथा लग्न में अष्टमेश होने पर व्यक्ति जुआ खेलने वाला, चोरी में मन लगाने वाला, राजा या जनता से मृत्यु प्राप्त करने वाला होता है।

नवम में लग्नेश तथा लग्न में नवमेश हो तो व्यक्ति धर्म में तत्पर, राजा द्वारा सम्मान पाने वाला, परदेश में जाकर निवास करने वाला होता है।

दशम स्थान में लग्नेश एवं लग्न में दशमेश के होने से व्यक्ति बहुत-सी भूमि का स्वामी, धन एवं सौन्दर्य के कारण विख्यात तथा बहुत धन-सम्पत्ति का स्वामी होता है।

एकादश स्थान में लग्नेश एवं लग्न में एकादशेश का योग होने पर मनुष्य राजा होता है। इसके अतिरिक्त वह दीर्घायु भी होता है।

यदि एकादशेश व लग्नेश उक्त स्थिति में शुभ ग्रहों से युक्त भी हों तो मनुष्य बहुत सुन्दर काम करने वाला होता है।

द्वादश स्थान में लग्नेश एवं लग्न में द्वादशेश हों तो वह सबसे शत्रुता रखने वाला, अल्पबुद्धि वाला, बहुत कंजूस, धन-नाशक तथा जल्दबाजी से कार्य करने वाला होता है।

यदि लग्नेश शुक्र के साथ षष्ठ, अष्टम व द्वादश स्थानों को छोड़कर कहीं विद्यमान हो तो मनुष्य राजाओं द्वारा सम्मानित होता है।"

टिप्पणी—सप्तमेश व लग्नेश का स्थान सम्बन्ध होने पर मनुष्य चंचल मन वाला, कामुक तथा पिता व साले का सेवक होता है। यही बात **गणेशदैवज्ञ** ने भी कही है—

**"मूर्तीशे कामयाते मदनसदनपे मर्तिगे तातसेवी,
लोलस्वान्तोऽगंनानां भवति हि मनुजः सेवकः श्यालकस्य।"**

'लग्नेश व सप्तमेश का परस्पर स्थान सम्बन्ध होने पर मनुष्य चंचल मन वाला, पितृसेवी एवं साले का सेवक होता है।'

कदाचित् ऐसा व्यक्ति अत्यन्त नम्र व सरल स्वभाव होने के कारण तथा पत्नी में अत्यन्त आसक्ति के कारण अपनी पत्नी के भाई को अधिक महत्त्व देता है।

अष्टमेश का लग्नेश के साथ उक्त सम्बन्ध होना शुभ नहीं होता है। क्योंकि क्रमशः मृत्यु स्थानेश व तनु स्थानेश का सम्बन्ध शुभ क्योंकर होगा ? मृत्यु के अतिरिक्त आठवां स्थान गूढ़ धन तथा कुमार्ग से अर्जित धन का भी है, अतः ऐसे व्यक्ति की प्रवृत्ति गलत तरीकों से धन कमाने की होगी। यही कारण है कि ऐसा व्यक्ति या तो राजदण्ड से मरता है अथवा लोग ही उसे इसके कार्यों की सजा दे दिया करते हैं। गैर कानूनी व समाज विरोधी कार्य करने की प्रवृत्ति इनमें पायी जाएगी।

नवमेश से सम्बन्ध होने पर प्रायः देखा जाता है कि वह व्यक्ति पैतृक स्थान पर सफलता प्राप्त नहीं करता है। वह अन्यत्र परदेश विदेश या दूसरे प्रान्त या स्थान में ही अपनी जीविका किया करता है। इसके विषय में यह विशेषता होती है कि ऐसा व्यक्ति मुसीबतों में भी अपने नीति बल व धर्म बल को बनाए रखता है। प्रायः ऐसे व्यक्ति अनुपम मनोबल के धनी होते हैं।

दशमेश से लग्नेश का सम्बन्ध तो निश्चित ही राजयोग कारक है। यदि दशमेश व लग्नेश दोनों ही बलशाली तथा क्रूर ग्रहों की दृष्टि से रहित हैं, तो अवश्य राजपद की प्राप्ति होती है।

एकादशेश के साथ यथोक्त सम्बन्ध मनुष्य को दीर्घायु, नृप तथा सुकर्मा बनाता है। दीर्घायु होने का रहस्य कदाचित् यह है कि एकादश स्थान द्वितीय स्थान (मारक स्थान) से केन्द्र स्थान है, इसी तरह मृत्यु स्थान (अष्टम) से भी केन्द्र स्थान (चतुर्थ) है। सप्तम मारक स्थान से त्रिकोण है तथा तृतीय (आयु) से भी त्रिकोण है। यही कारण है कि जब शुभ ग्रहों से दृष्ट लग्नेश व एकादशेश यहां उक्त स्थिति में सम्बन्ध बली होंगे तो मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त होगी।

बारहवें स्थान के स्वामी के साथ उक्त सम्बन्ध शुभ नहीं होता है। धन-हानि, बुद्धि की चंचलता तथा शीघ्रकारिता व्यक्ति के शुभ योगों को नष्ट कर देती है। ऐसा व्यक्ति अपनी उतावली से प्रायः स्वयं अपनी हानि किया करता है। केवल लग्नेश के ही द्वादशगत होने से भी उक्त फल काफी सीमा तक घटित होता है, ऐसा हमारा अनुभव है। ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही आलोचना कर दिया करता है तथा अति स्पष्ट-वादिता से अपनी स्वयं कार्य हानि कर लिया करता है।

इस योग सम्बन्ध के विषय में एक बात और ध्यान देने योग्य है कि यदि पिता, बड़े भाई, ससुर आदि का भी विचार करना हो तो उनके भाव को जातक की कुण्डली में उनका लग्न स्थान मानकर आगे के भावों में धन, पराक्रम आदि भावों की कल्पना करके लग्नेश तथा भावेश के सम्बन्ध से अपने पिता आदि का फल भी उक्त रीति से जाना जा सकता है। इस विषय में **जातकालंकार** में कहा गया है—

'…इत्थं तातादिकानांमपि जनुषि तथा खेचराणां हि योगाद्,
वाच्यं होरागमज्ञैस्तदनु तनुपयुग्भार्गवे राजपूज्यः॥"

"इसी तरह पिता आदि के भी लग्नेश व भावेश अपनी कुण्डली म ही कल्पित करके उनका फल जान लेना चाहिए। यदि लग्नेश शुक्रसहित शुभ भावों में युति करता हो तो व्यक्ति राज-पूज्य होता है।

इन लग्नेश व भावेश के योगों के विषय में **गणेशदैवज्ञ** ने **जातका-लंकार** में प्रायः वही बातें कही हैं, जो कि ग्रन्थकार कह चुके हैं, अतः विशेष पुष्टि के लिए **जातकालंकार** का अध्ययन भी लाभदायक होगा।

ग्रह-योग से परस्पर बल-वृद्धि :

यमः पतंगेन यमेन भूजनि-
रार्य्योऽसृजा वाक्पतिना हिमद्युतिः ।
कविः कलेशेन सितेन सोमजः
सुधाकरः सोमसुतेन वर्द्धते ॥१२॥

"सूर्य व शनि के साथ-साथ होने पर शनि का बल स्वाभाविक रूप से बढ़ता है। इसी तरह शनि से मंगल का, मंगल से गुरु का, गुरु से चन्द्रमा का, चन्द्रमा से शुक्र का, शुक्र से बुध का तथा बुध से चन्द्रमा का बल बढ़ता है।"

टिप्पणी—आशय यह है कि उक्त प्रकार से जब ग्रहों का योग होगा तो उनका यथोक्त ढंग से बल बढ़ेगा। **वैद्यनाथ** ने भी कहा है—

"अर्कोणमन्दः शनिना महोसुतः कुजेन जीवो गुरुणा निशाकरः ।
सोमेन शुक्रोऽसुरमन्त्रिणा बुधो बुधेन चन्द्रः खलु वर्धते सदा ॥"

"सूर्य से शनि का, शनि से मंगल का, मंगल से गुरु का, गुरु से चन्द्र का, चन्द्र से शुक्र का, शुक्र से बुध का तथा बुध से चन्द्र का बल सदा बढ़ता है।"

सूर्य व शनि का योग होने पर ज्योतिर्विदों ने शनि में मूढ़ दोष माना है (मन्दार्क योग)। लेकिन इस तरह सूर्य व शनि की युति से शनि का बल बढ़ता है। स्वयं **वराह** ने ऐसा माना है।

परस्पर दोष-निवारक ग्रह :

विध्नन्ति दोषं तमसोऽर्कसूनु-
र्द्वयोस्त्रयाणां कुजनिश्चतुर्णाम् ।
भः पञ्चदोषं धिषणोऽथ षण्णां
ग्लौः सप्तदोषं मिहिरो निहन्ति ॥१३॥

"राहु के दोष को बुध दूर करता है, राहु व बुध के दोष को शनि दूर कर देता है। इन तीनों के दोष की शान्ति अकेला मंगल करता

है। इन चारों के दोष को शुक्र, इन पांचों के दोष को गुरु, इन सबके दोष को चन्द्रमा तथा सातों ग्रहों के दोष को उत्तरायण का सूर्य नष्ट कर देता है।"

टिप्पणी—यहां पर ग्रहों का परस्पर दोष-निवारण बताया गया है। राहु के कारण यदि किसी अशुभ फल की प्राप्ति होने वाली हो तब बुध का सम्बन्ध यदि उक्त भाव से होता होगा तो राहु सम्बन्धी अशुभ फल की प्राप्ति नहीं होगी। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के विषय में भी समझना चाहिए। उदाहरणार्थ एक कुण्डली यहां प्रस्तुत की जा रही है।
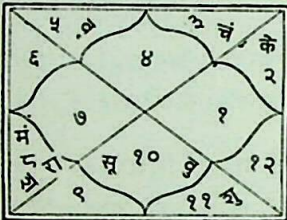
यह कुण्डली एक ऐसे व्यक्ति की है जो उत्तम विद्या बुद्धि सम्पन्न तथा पुत्रवान् है। पंचम स्थान, जो विद्या, बुद्धि तथा सन्तान का है, पाप ग्रहों से आक्रान्त है, लेकिन राहु व शनि के कुप्रभाव को मंगल ने समाप्त कर दिया, अतः कुछ विकट परिस्थितियों के बावजूद भी इन्हें दो पुत्रों की प्राप्ति हुई तथा विद्याध्ययन के मार्ग की सभी बाधाएं अप्रभावकारी साबित हुईं।

यही स्थिति स्त्री स्थान के भी सम्बन्ध में है। अस्तंगत दुष्ट स्थानेश तथा तृतीयेश बुध वहां है। शुभ ग्रहों की दृष्टि नहीं है तथा सप्तमेश पंचम स्थान में शत्रुक्षेत्री है तथा दो-दो पाप ग्रहों से युक्त है। स्त्रीकारक शुक्र अष्टमगत है, अतः वैवाहिक सम्बन्ध, दाम्पत्य सुख तथा स्त्री सुख की अल्पता के विशेष योग बनते हैं, लेकिन इनकी पत्नी दो बार शल्य क्रिया (उदर) से गुजरने पर भी सकुशल है तथा इनके परस्पर सम्बन्ध उत्तम हैं। इसका कारण है कि सप्तमेश शनि अपने स्थान को पूर्ण दृष्टि से तो देख ही रहा है, साथ ही वह सूर्य के साथ उपर्युक्त नियम के अनुसार बुध के दोष की भी शान्ति कर रहा है।

ग्रहों के इस पारस्परिक बाध्य-बाधक भाव का उल्लेख करते हुए **वैद्यनाथ** ने कहा है—

राहुदोषं बुधो हन्याद् उभयोस्तु शनैश्चरः।
त्रयाणां भूमिजोहन्ति, चतुर्णां दानवार्चितः॥

पंचानां देवमन्त्री च षण्णां दोषं तु चन्द्रमाः ।
सप्तदोषं रविर्हन्याद् विशेषादुत्तरायणे ।।

"राहु दोष को बुध, दोनों (बुध, राहु) के दोष को शनि, तीनों के दोष को मंगल, चारों के दोष को शुक्र, पांचों के दोष को गुरु, इन छहों के दोष को चन्द्रमा तथा सातों के दोष को सर्य (विशेषतः उत्तरायण में) दूर करता है।"

श्रीमद्गढवालदेशान्तर्गत खण्डग्रामवास्तव्येन वडेथवालवंशावतंसेन श्रीमत्पण्डित-वर्य्यमुकुन्दराम दैवज्ञेन विरचितायां भावमञ्जर्यां प्रकीर्णप्रकरणमष्टमं समाप्ति-मगमत् । श्रीराम् ।

—०—

उपसंहार

(ग्रन्थकार परिचय)

सिद्धश्रीगढवालनीवृति महाढांगूप्रदेशान्तरे
खण्डे संवसथे द्विजातिमहितः श्रीचन्द्रदत्तोऽजनि ।
तस्माच्छ्रीकलिरामनामविदितः श्रीख्यातिरामस्तत-
स्तस्मात्सूरिशिरोमणि रघुवरः श्रीमान्प्रभूतादरः ।।१४।।

तत्कीर्त्यङ्गभवो मुकुन्दगणको देवप्रयागे वस-
ञ्ज्योतिःशास्त्रसुमस्य ये मधुकरा ज्ञास्तन्मुदे मंजरीम् ।
भावाद्यां विमलां स्फुटां व्यरचयद्गोऽङ्गोरगेलाशके
मास्यूर्ज्जे भृगुवासरे भपतिथावेषाऽगमत्पूर्णताम् ।।१५।।

हिमालय पर्वत की गोद में स्थित पवित्र **गढ़वाल प्रदेश** के **ढांगू** मण्डल के **खण्ड** नामक ग्राम में श्रेष्ठ ब्राह्मण **श्री चन्द्रदत्त** का जन्म हुआ। उनके यहां स्वकुल में विख्यात **श्री कलिराम** नामक पण्डित के घर में **श्री ख्यातिराम** हुए। उनके पुत्र विद्वान् **श्री रघुवर** व पत्नी **कीर्ति देवी** के गर्भ से श्रीमान् **मुकुन्ददैवज्ञ** (ग्रन्थकार) उत्पन्न हुए।

इन मुकुन्ददैवज्ञ ने गंगा व अलकनन्दा के बीच स्थित पवित्र तीर्थ **देवप्रयाग** में रहते हुए, ज्योतिः शास्त्र रूप पुष्प के लुब्ध भ्रमरों (विद्वानों) की प्रसन्नता के लिए अत्यन्त स्वच्छ इस **भावमंजरी** की रचना की है।

यह ग्रन्थ श्री मुकुन्द ने अट्ठारह सौ उनहत्तर (१८६९) शक संवत् में कार्तिक मास, शुक्रवार तदनुसार पूर्णिमा (भप) तिथि को समाप्त किया।

श्रीमन्मुकुन्ददैवज्ञप्रणीता भावमंजरी ।
प्रणवाख्याव्याख्योपेता, भूयाद्धोराविदां मुदे ।।"

'यह प्रणवाख्या' हिन्दी व्याख्या में प्रकीर्ण प्रकरण समाप्त हुआ।

दक्षिण भारत की अनुपम देन
मलयालम व प्राकृत भाषा से अनूदित

प्रश्न मार्ग

(Prasna Marga)

व्याख्याकार : डा० शुकदेव चतुर्वेदी, ज्योतिषाचार्य :

जिसमें फलित ज्योतिष के समस्त विषय और कुछ ऐसे अकाट्य नियम जो अन्य ग्रन्थों में अनुपलब्ध हैं।
मूल संस्कृत श्लोक, सरल हिन्दी अनुवाद सहित, सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन खण्डों में

(पृष्ठ संख्या एक हजार)

दाम्पत्य-सुख

[Astrology and Marriage]

दाम्पत्य सुख—**"एक ज्योतिष शास्त्रीय अध्ययन"** हिन्दी भाषा में पहली बार प्रकाशित ऐसा अनूठा ग्रंथ है : जिसमें दाम्पत्य जीवन [Married life] और दाम्पत्य सम्बन्ध [Sexual Relations] में उत्पन्न होने वाली अधिकांश समस्याओं के समाधान का सांगोपांग विवेचन शास्त्रीय रीति से किया गया है।

अनेक ग्रन्थों के प्रणेता तथा ज्योतिषशास्त्र के प्रख्यात विद्वान **डा० शुकदेव चतुर्वेदी** ने प्रस्तुत ग्रन्थ में ज्योतिषशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार वर-वधू का चुनाव [Selection of Spouse], उनके गुण-दोषों का विवेचन, नक्षत्र एवं ग्रह-मेलापक, मंगली दोष, विवाह होने का समय, विवाह होने में बाधाओं के कारण, उनका निराकरण एवं संतान-सुख जैसे गम्भीर प्रश्नों का सरल, सहज, बोधगम्य शैली में प्रतिपादन किया गया है।

दाम्पत्य-सुख जैसे महत्वपूर्ण विषय पर हिन्दी भाषा में यह अपूर्व ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र के विद्वान, ज्योतिष प्रेमियों एवं अन्य पाठकों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

मूल्य 40.00

दशाफल रहस्य (जगन्नाथ भसीन)

[Secrets of Vimshottari Dasa]

विंशोत्तरी पर अन्य ग्रन्थों में जो विधि दशाभुक्ति के फल के सम्बन्ध में अपनाई गई है, वह यद्यपि सत्य है तो भी अनुभव में पूर्ण सत्य नहीं उतरती। इस अनुपम ग्रन्थ में प्रत्येक ग्रह को न लेकर **'विंशोत्तरी'** का फल शुभ तथा अशुभ ग्रहों के वर्गीकरण द्वारा दर्शाया गया है जो अधिक व्यापक है। दशा के फल का समय दशा और गोचर दोनों के परीक्षण द्वारा निश्चित किया जाता है। इस सम्बन्ध में बीस से अधिक कुंडलियों के उदाहरण द्वारा घटनाओं के दिन का निश्चय क्रियात्मक रूप से दर्शाया गया है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि गोचर में गुरु और शनि किस प्रकार अच्छी व बुरी घटनाओं का समय निर्धारित करते हैं। अन्तर्दशा व प्रत्यन्तर्दशा का फल रोचक एवं सरल भाषा में, सम्पूर्ण पुस्तक में 50 से अधिक कुण्डलियों के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। [नवीन संस्करण]

मूल्य 20.00

मूक प्रश्न विचार (Silent Questions-Answered)

विद्वान लेखक डा० शुकदेव चतुर्वेदी, ज्योतिषाचार्य द्वारा रचित सर्वथा कठिन एवं अछूते विषय पर सरल एवं व्यावहारिक रचना जिसमें बिना बताए मन में सोचे हुए प्रश्नों का ज्योतिष द्वारा समाधान प्रस्तुत है। आशा है पाठकगण हमारी इस अनुपम पुस्तक पर मुग्ध हो जाएंगे।

मूल्य 20.00

ज्योतिष और रोग (Medical Astrology)

प्रस्तुत पुस्तक में रोग सम्बन्धी सभी विषयों को ज्योतिष के आधार पर 80 कुण्डलियों के उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है।

खोजपूर्ण रचना, प्रशंसा आप स्वयं करेंगे। अब तक ऐसी पुस्तक नहीं छपी। (नवीन संशोधित संस्करण)

मूल्य 15.00

महिलाएं और ज्योतिष (Astrology for Women)

ज्योतिष साहित्य में महिलाओं सम्बन्धी एक स्वतन्त्र एवं मौलिक पुस्तक का अभाव रहा है। प्राय: ज्योतिषी 'पुरुष जातक' के आधार पर ही महिलाओं की जन्म-कुण्डलियों का अध्ययन करते हैं जो पूर्ण फलदायी नहीं कहा जा सकता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आवश्यक उदाहरणों एवं वास्तविक कुण्डलियों के विवेचन सहित उक्त विषय पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक की रचना की गई है। मूल्य : 15.00

मंत्र शक्ति (डा० रुद्रदेव त्रिपाठी)

मन्त्रों की अद्‌भुत शक्ति का रहस्य एवं मानव जीवन में उनकी उपयोगिता निर्विवाद है। प्रस्तुत रचना में दैनिक उपयोग में आने वाले विभिन्न मन्त्र एवं उनकी साधन विधि सरल एवं व्यावहारिक रूप में दी गई है। (नवीन संशोधित संस्करण) मूल्य : 12.00

गोचर विचार (Planetary Transit)

सुप्रसिद्ध लेखक जगन्नाथ भसीन कृत अनुपम पुस्तक जिसमें विद्वान् लेखक ने गोचर के मौलिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए फलादेश के लिए गोचर पद्धति के प्रयोग की विधि को भली प्रकार दर्शाया है।

आचार्य वराहमिहिर आदि प्रदिष्ट अष्टक वर्ग से गोचर के घनिष्ठ सम्बन्ध को दर्शाते हुए विविध ग्रहों का जन्मकालीन चन्द्र की स्थिति के अनुसार विशद फल कहा है। अन्त में घटनाओं के घटने का समय और इसे निश्चित करने में गोचर के प्रयोग को दर्शाया है। मूल्य : 15.00

भुवन दीपक डा० शुकदेव चतुर्वेदी (Horary Astrology)

'भुवन दीपक' प्रश्न शास्त्र की लघुकाय किन्तु चमत्कारी पुस्तक है। यह दुर्लभ पुस्तक अव सरल वैज्ञानिक शैली में हिन्दी व्याख्या सहित उपलब्ध है।

विद्वान् भाष्यकार ने प्रश्नशास्त्र की जटिल गुत्थियों को तुलनात्मक रीति से सुलझाया है। जिज्ञासु पाठकों के लिए निश्चय ही यह अनूठी पुस्तक है। मूल्य : 20.00

वर्ष फल विचार (Annual Horoscopy)

पुस्तक की सहायता से पाठक वर्षकुण्डली वनाकर, स्वास्थ्य के लिए यह वर्ष कैसा ? आर्थिक स्थिति, अपना मकान, वाहन, सन्तान और पत्नी द्वारा सुख-दुख, समाज में प्रतिष्ठा, पदोन्नति (Promotion)वदली(Transfer) आदि जीवन की विविध समस्याओं का समाधान स्वयं जान सकते हैं।

लेखक ने शास्त्रीय विषय को अपने अनुभव, विशेष विचार तथा टिप्पणियों सहित भावफल विचार और नवाव खानखाना के योगों को बड़े उत्तम रूप से प्रस्तुत किया है। नया संस्करण मूल्य : 15.00

यंत्र शक्ति (डा० रुद्रदेव त्रिपाठी)

प्रस्तुत पुस्तक विद्वान लेखक की अनुपम रचना है। जिसमें दश महा-विद्याओं के यन्त्र, श्रीयंत्र, महालक्ष्मी यंत्र, श्रीसूक्त यंत्र, वीसा यंत्र, पंचदशी यंत्र और अन्य अनेक अनुभूत यंत्रों का दुर्लभ संग्रह है। पुस्तक सरल एवं रोचक भाषा में सर्वसाधारण एवं विद्वान पाठकों के लिए अनूठा मार्ग-दर्शन प्रस्तुत करती है। (दो भागों में) प्रत्येक भाग : 20.00